



ଓମ୍ବିର
ଲୁହା

अम्री द खुसरो



संपादक
डॉ. राजनारायण राय

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा समा. पुणे

प्रकाशक :
ग. वा. करमरकर,
सचिव, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा,
राष्ट्रभाषा-भवन, नारायण पेठ, पुणे ४११०३०.

प्रतियोगी २०००

प्रथम संस्करण २२ मई, १९७५

मूल्य रु. १५-००

मुद्रक :
एच. पी. सव्याद,
प्रेरणा मुद्रणालय,
३५८/२, नानापेठ, पुणे ४११००२



Ali Yavar Jung



Raj Bhavan,
Bombay-35 (W.B)
9 March 1975

The Maharashtra Rashtrabhasha Sabha, Poona, has to its credit more than 100 publications during its life of 35 years. These include, among others, books on Guru Nanak and Ameer Khusrau, and I wish it would undertake similarly a work on Namdeo and Kabir specially as the approach and thought and in some cases even the language of Ameer Khusrau, Kabir, Nanak and Namdeo closely resemble each other. I am particularly happy that the book on Ameer Khusrau has just appeared as his 7th centenary will be celebrated in October this year on not only a national but international scale, the latter on the basis of the proposal sponsored by India at the U.N.E.S.C.O. and co-sponsored by Afghanistan, Iran, Pakistan and the Soviet Union.

Although of Turkmani stock, Ameer Khusrau was born in India, married in India and died in India. He moved among kings and was patronized by them and he was also a soldier, but, above all, he was the spiritual disciple of Nizamuddin Aulia, the great Sufi, and his home was more the *Khamqa* than the courts, while his contacts were with the common people. His versatility produced the most exquisite spiritual thought in Persian and Hindi (Hindavi as it was called then), but he was also a historian and a great observer of the conditions and customs of the age and, as a linguist, he not only inherited knowledge of Turkish and Persian but also, as an Indian, spoke and wrote Hindavi and the Khadi Boli in which language, besides such of his poems as are extant, his proverbs, sayings and songs are still known and recited even in the village of Uttar Pradesh and the neighbouring states. According to the tradition of the age in which he lived, he indulged in some panegyrics of kings but combined them with advice as to private and public conduct and the conscience which must accompany power and its use. In our quest for national integration and for the promotion and appreciation of spiritual values and thought, he was one of the greatest sons of India and prided himself on being an Indian, calling India the best of the countries of the World and showering his admiration and loyalty on it.

I congratulate the Maharashtra Rashtrabhasha Sabha on producing this fine work at this moment.

Ali Yavar Jung
Governor of Maharashtra.

सम्मति

सिद्धेश्वर प्रसाद

ऊर्जा उपमंत्री, भारत

डॉ. राजनारायण राय द्वारा संपादित 'अमीर खुसरो' पुस्तक हिंदी में अपने ढंग की अकेली है। जहाँ तक मुझे पता है, किसी और भाषा में भी 'अमीर खुसरो' पर कोई ऐसी पुस्तक नहीं है।

अमीर खुसरो जैसे व्यक्ति के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालनेवाली एक अच्छी पुस्तक का संपादन कर डॉ. राय ने सराहनीय कार्य किया है। मुझे विश्वास है कि उनकी इस पुस्तक से पाठकों को आधुनिक भारतीय साहित्य को देखने की एक नई दृष्टि मिलेगी।

सिद्धेश्वर प्रसाद

संपादकीय

अमीर खुसरो फारसी के सर्वश्रेष्ठ शायर, महान् संगीतज्ञ तथा हिंदी और उर्दू के आदि कवि माने जाते हैं तथापि उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का मूल्यांकन जितना अपेक्षित है उतना नहीं हुआ। अंग्रेजी में प्रो. मुहम्मद हबीब, डॉ. बहीद मिर्जा और संयद गुलाम समनानी आदि ने प्रयत्न किए जिनमें डॉ. मिर्जा का 'लाइफ एंड वर्क्स ऑफ अमीर खुसरो' शोध-प्रबंध सर्वोत्कृष्ट है। इनके अतिरिक्त यदा-कदा पत्र-पत्रिकाओं में भी अनेकानेक शोध-निबंध प्रकाशित हुए जो काफी महत्वपूर्ण हैं। ऐसे निबंध-लेखकों में श्री देवीसिंग चौहान, प्रो. हमन अमररी, सवाह उद्दीन अब्दुर रहमान शिवली, डॉ. निजामुद्दीन गोरेकर आदि प्रमुख हैं। अमीर खुसरो के काव्य-वैभव को देखते हुए ये कोशिशें बहुत ही कम मालूम पड़ती हैं।

हिंदी में भी कोई ठोस कार्य नहीं हुआ यद्यपि श्री ब्रजरत्नदास की पुस्तका 'खुसरो की हिंदी कविता' और श्रीराम शर्मा समादित 'खालिक बारी' इस दिशा में उपयोगी साबित हुई। इनके साथ ही महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा द्वारा प्रकाशित 'राष्ट्रवाणी' का 'अमीर खुसरो विशेषांक, मार्च-जून-७२' भी उल्लेख है क्योंकि उसके माध्यम से हिंदी पत्रिका ने पहली बार अमीर खुसरो को समझने-समझाने का प्रयत्न किया। फिर भी यह शिकायत बनी रह जाती है कि हिंदी के आदि कवि होने के बावजूद भी खुसरो की काव्य-संपदा का अध्ययन मूल्यांकन हिंदी में ही उपेक्षित रहा। कारण चाहे जो कुछ भी रहा हो पर यह चक्षु उन्मीलक तथ्य है। प्रस्तुत निबंध-संग्रह एतद्विषयक कमों को दूर करने का एक प्रयास है।

महाराष्ट्र के महामहिम राज्यपाल अली यावर जंग ने इस ग्रंथ की भूमिका लिखकर जो प्रोत्साहन दिया है उसके लिए मैं आभारी हूँ। जिन हितेषी विद्वानों एवं सभा के अधिकारियों से इस पुस्तक के निर्माण तथा प्रकाशन में सहयोग, प्रेरणा और बल मिला है उनके प्रति संपादक कृतज्ञ है।

विश्वास है, यह लघु-प्रयत्न पाठकों को परितोष देगा।

राजनारायण राय

प्रकाशकीय

‘अमीर खुसरो’ पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता होती है।

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा की मासिक पत्रिका ‘राष्ट्रवाणी’ ने कई विभिन्न विशेषांकों का प्रकाशन कर हिंदी साहित्य के विकास में अच्छा योगदान दिया है। राष्ट्रवाणी ने समय-समय पर ‘युवा-कहानी विशेषांक’, ‘शंकरदेव विशेषांक’, ‘नामदेव विशेषांक’, ‘नानक विशेषांक’ आदि की भाँति ‘अमीर खुसरो’ विशेषांक भी दो भागों में प्रकाशित किया था जिसका हिंदी के पाठकों ने अभूतपूर्व स्वागत किया। इसी से प्रेरणा पाकर ‘अमीर खुसरो’ पर एक पुस्तक प्रकाशित करने की योजना बनी। इस पुस्तक में ‘राष्ट्रवाणी’ में प्रकाशित लेखों के अतिरिक्त कुछ अन्य विशेष लेख भी सम्मिलित किए गए हैं।

हिंदी के सुधी पाठकों को अमीर खुसरो और खड़ीबोली के संबंध को नए सिरे से बताने की आवश्यकता नहीं। अमीर खुसरो की विभिन्न प्रवृत्तियों का विवेचन करनेवाली कोई अच्छी पुस्तक नहीं है। हम मानते हैं कि इस पुस्तक के प्रकाशन से इस कमी की आंशिक रूप में पूर्ति हो जाएगी।

डॉ. राजनारायण गाय हिंदी के विश्वात लेखक और समीक्षक हैं। आपने ही राष्ट्रवाणी के ‘अमीर खुसरो’ विशेषांक का संयोजन किया था। आपके परिश्रमों के कारण ही ‘अमीर खुसरो’ पर इतनी अच्छी सामग्री जुट पाई। हम आपको तथा उन लेखकों को भी धन्यवाद देते हैं जिन्होंने हमें अपने लेख इस पुस्तक में सम्मिलित करने की अनुमति दी।

महाराष्ट्र के राज्यपाल श्री अली याबर जंग और भारत सरकार के ऊर्जा उपमंत्री श्री सिद्धेश्वर प्रसाद ने अपनी सम्मतियाँ भेजकर हमें उपकृत किया जिसके लिए हम उनके बाभारी हैं।

राष्ट्रभाषा भवन,
न्युरायण पेठ, पुणे ४११०३०

ग. वा. करमरकर
सचिव
महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा

लेखक परिचय

१. डॉ. राजनारायण राय— ए. सी. कॉलेज, पुणे में हिंदी विभागाध्यक्ष । सूरवर्णित रासलीला का दार्शनिक अध्ययन ' पर पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त । अनेक निबंधों का विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशन ।

२. प्रो. जी. डी. एस. शेख 'शिहाब'— वाडिया कॉलेज, पुणे के उर्दू-फारसी विभाग के अध्यक्ष । उर्दू और फारसी के जाने-माने विद्वान, कवि, अनुसंधाता ।

३. डॉ. अमानत— वाडिया कॉलेज के उर्दू फारसी विभाग में प्राध्यापक ।

४. प्रो. एस. शाहजहाँ— गवर्नर्मेंट आर्ट्स कॉलेज, कोयम्बटूर (मद्रास) के हिंदी विभागाध्यक्ष । मलयालम के सुपरिचित उपन्यासकार । प्रकाशित उपन्यासः वेनस, स्वर्ण-भूमि, यामम् आदि । भारतीय नैदिक विद्यापरिषद से ' साहित्य वाचस्पति ' की उपाधि प्राप्त ।

५. श्रीरंजन मूरिदेव— विहार राष्ट्रभाषा परिषद की ' परिषद् पत्रिका ' के सहायक संपादक । संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ और हिंदी के लोकपरिचित लेखक, निबंधकार एवं पत्रकार । अनेक ग्रंथ प्रकाशित ।

६. डॉ. शं. के. आडकर— अहमदनगर कॉलेज में हिंदी विभागाध्यक्ष । उर्दू-मराठी के उत्साही अध्येता । पुणे विद्यापीठ की पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त । ' हिंदी निर्गुण काव्य का प्रारंभ और नामदेव की हिंदी कविता ' शोध-प्रबंध प्रकाशित ।

७. सव्यद ज्ञहीरुहीन मदनी— अंजुमन-ए-इस्लाम उर्दू रिसर्च इंस्टिट्यूट के निदेशक एवं उर्दू और फारसी के सुविख्यात विद्वान । वली गुजराती, वली की शायरी और इंतिखाब-ए-कलाम आदि अनेक किताबों के संपादक एवं लेखक । बंबई विश्वविद्यालय में उर्दू विभागाध्यक्ष एवं शोध निदेशक ।

८. डॉ. राजनारायण मौर्य— हिंदी भाषा तथा भाषा-विज्ञान पर शोध-कार्य । संत नामदेव की हिंदी पदावली का संपादन । अनेक शोध-निबंधों का यत्र-तत्र प्रकाशन । पुणे विद्यापीठ के स्नातकोत्तर हिंदी विभाग में प्राध्यापक एवं शोध निदेशक । संप्रति जागरेव विश्वविद्यालय (युगोस्लाविया) में प्राध्यापक ।

१. डॉ. गोपालजी 'स्वर्णकिरण'— 'हिन्दी में समस्यापूर्ति की परम्परा तथा विकास' जोध-प्रबंध पर पटना विश्वविद्यालय से पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त। नचिकेता, भीष्म आदि कई काव्य-कृतियाँ प्रकाशित। अन्य प्रकाशित कृतियाँ : संत रविदास, विभीषण (नाटक), संत रविदास और उनका काव्य (आलोचना ग्रंथ)। नवलेखन के प्रबल समर्थक एवं सुपरिचित लेखक-समीक्षक। संप्रति किसान कॉलेज, सोहसराय (पटना) के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक।

१०. श्री. देवीसिंग चौहान— ग्रन्थ्यात् विद्वान्, मध्यकालीन इतिहास के अधिकारी विशेषज्ञ। हैदराबाद राज्य के भूतपूर्व सलाहकार एवं शिक्षामंत्री। तारीखे इस्कंदरी, इब्राहीमनामा, जंगनामा, फूलबन आदि ग्रंथों का सम्पादन।

११. श्री. परमानंद पांचाल—हिन्दी के समीक्षक एवं निबंधकार। फारसी, उर्दू आदि भारतीय भाषाओं के अध्येता। 'दविखनी हिन्दी कवियों की पारिभाषिक शब्दावली' विषय पर शोधरत। बहुचर्चित ग्रंथ 'हिन्दी के मुस्लिम माहित्यकार' के लेखक। संप्रति 'संघ लोकसेवा आयोग' दिल्ली से मम्बद्ध। पता- ए ६, भिन्दार्थ, पा. जंगपुरा, नई दिल्ली।

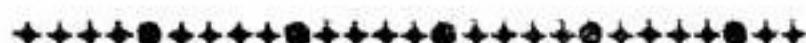
१२. डॉ. यूसुफ पठान—'महानुभाव सम्प्रदाय के कवियों की हिन्दी रचनाएँ' पर पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त। मराठी संत-साहित्य के प्रतिष्ठित विशेषज्ञ। नागेश सम्प्रदाय, सुदामा चरित, भाऊसाहेबाची बखर आदि अनेकानेक ग्रंथों के प्रणेता, संपादक। महाराष्ट्र शासन की लोकसाहित्य समिति के सदस्य। संप्रति मराठवाडा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद के मराठी विभाग में रीडर एवं शोध निर्देशक। पता- ११०१८५ आनंदनगर, टाऊन हॉल के पास, औरंगाबाद।

विषयानुक्रम

- १ तूती-ए-हिंद और उनके समकालीन
डॉ. राजनारायण राय
- १९ अमीर खुसरो : एक मुहिब्बे वतन शायर
प्रा. जी. डी. एस्. शेख 'शिहाब'
- ३५ अमीर खुसरो की रुमानी मस्नवी : मजनू व लैला
डॉ. अमानत
- ५३ अमीर खुसरो : हिंदी के आदि कवि
एस्. शाहजहाँ
- ६२ अमीर खुसरो और राष्ट्रभाषा हिंदी
श्री. रंजन सूरिदेव
- ६९ खुसरो की मस्नवियाँ
डॉ. शं. के. आडकर
- ८२ अमीर खुसरो और भारतीय सगीत
सव्यद जहीरदीन मदनी
- ९२ अमीर खुसरो की हिंदी
डॉ. राजनारायण मौर्य
- १०२ अमीर खुसरो की गद्य कृतियाँ
डॉ. राजनारायण राय
- ११० अमीर खुसरो की हिंदी पहेलियाँ
डॉ. 'स्वर्णकिरण'
- १२२ अमीर खुसरो का भारतीय भाषा सर्वेक्षण
श्री. देवीसिंग चौहान
- १२९ अमीर खुसरो पर संस्कृत का प्रभाव
श्री. देवीसिंह चौहान
- १३९ अमीर खुसरो का हिंदी काव्य और 'खालिक बारी'
श्री. परमानंद पांचाल
- १४९ अखबारनवीस अमीर खुसरो
डॉ. यूसुफ पठान
- १५६ अमीर खुसरो का राजधर्म-वर्णन
डॉ. राजनारायण राय
- परिशिष्ट : 'तूती-ए-हिंद : साहित्यालोचकों की दृष्टि में'

तूती-ए-हिंद ' और उनके समकालीन

डॉ. राजनारायण राय



'तूती-ए-हिंद' अमीर खुसरो का जीवन काल है १२५३ ई. से १३२५ ई. तक। यह अवधि हिंदी साहित्येतिहासकारों के मतानुसार वीरगाथाकाल या संक्रमण युग है। हिंदुस्तानी इस्लाम धर्म का प्रखर सूर्योदय और इस्लामी साम्राज्य का प्रथम चरण इस युग की उपलब्धि है। राजनीतिक दृष्टि से यह भारतीय सम्राटों और सामंतों की पराजय तथा मुस्लिम शासकों की विजय का युग है। अत्याचार, व्यभिचार, छल-कपट और हत्या तत्कालीन शासकों का प्रमुख व्यवसाय था; बर्बरता, निर्दयता, कामुकता, लंपटता उनकी चारित्रिक विशेषता थी। विध्वंसकारी आक्रमणों और बलात् धर्म-परिवर्तन ने जीवन को आतंक, संत्रास और निराशा की कहानी बना दिया था। सर्वत्र कुव्यवस्था थी। केंद्रीय शक्ति का अभाव था और छोटे-छोटे

सामंतों तथा नरेशों का प्रावल्य; राजसभाओं में प्रशस्ति-गायकों, चारणों, मुकरियों और मुजकिरों का सम्मान था; धर्माधि काजियों एवं सद्रुसुदूरों की पक्ष-पातपूर्ण नीति से न्याय उठ गया था; जिसकी लाठी उसकी भैस की कहावत हर शेर में चरितार्थ थी। इस्लाम की तलवार के समक्ष विभिन्न भारतीय धर्म भयभीत तो न होते; किंतु, अग्नि-परीक्षा उन्हें अवश्य देनी पड़ती थी। जब अमीर खुसरो-काल में देश की ऐसी दशा थी और जनता अति निराश, उदासीन और आतंकित थी तब क्या लेखनकार्य की गति अवरुद्ध और खंडित हो गई थी? इतिहास के कतिपय अन्वेषकों का कहना है कि तत्कालीन प्रतिकूल राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थिति ने दर्शन, साहित्य, संगीत आदि क्षेत्रों की उर्वरता पूर्ण रूप से नष्ट कर दी थी¹। यदि इस कथन का महत्व है तो इसका अर्थ है कि अमीर खुसरो अपने काल का अकेला कला-साधक था। इस मान्यता का परीक्षण दर्शन, साहित्य, संगीत और कला के संदर्भ में वहाँ किया जा रहा है।

दर्शन

भारतीय दर्शन के भेदोपभेदों से सम्बद्ध विषयों पर खुसरोकालीन चितकों, आचार्यों और तार्किकों ने छोटे-मोटे कई ग्रंथ-प्रणयन किए। किंतु, जैन-न्याय-दर्शन के विकासार्थ कोई श्लाघनीय प्रयत्न नहीं हुआ। मलिलबेणसूरि ने अपने अग्रज हेमचंद्ररचित 'अन्ययोगव्यवच्छेद द्वार्तिशिका' की अत्यंत विशद तथा प्रामाणिक टीका लिखी जो 'स्याद्वाद-मंजरी' के अभिधान से प्रसिद्ध हुई। टीकाकार की तार्किकता और विद्वत्ता की अभिव्यक्ति न केवल ब्राह्मण, चार्वाक तथा बौद्ध दर्शनों की समीक्षा में हुई है, अपितु जैन सिद्धांतों के विवेचन में भी। न्याय-शास्त्र के आचार्यों में गंगेश आलोच्य कालखंड की देन हैं जो मिथिला की चितनपरक उर्वरता का प्रमाण है। इन्होंने 'तत्त्व चितामणि' के माध्यम से एक सर्वथा नवयुग का प्रवर्तन किया। नव्य न्यायदर्शन की स्थापना के हेतु खण्डनखण्डखाद्यकार श्री हर्ष के सिद्धांतों का प्रमाणपुष्ट खण्डन किया। गंगेश का प्रदेय दर्शन शब्दावली निर्माण की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। 'तत्त्वचितामणि' की टीका 'आलोक' जयदेव ने लिखी जिनका दूसरा नाम पक्षधर मिश्र था। इनकी शिष्य मंडली में रुचिदत्त मिश्र थे जिन्होंने टीका साहित्य को सम्पुष्ट किया। शैवशाक्त तंत्र के आचार्यों ने भी किसी नूतन

I. Older historians, on the other hand, cling to opinion that the period (1206-1526) from literary and cultural point of view, was entirely barren.—Dr. Ashirbadi Lal Srivastava : The Sultanate of Delhi, P. 338.

दृष्टि का परिचय नहीं दिया, वे केवल टीका-प्रणयन में लगे रहे। ऐसों में ऋमुख हैं लक्ष्मीधर (१२६८-१३७९ ई.) जिनकी टीका शाक्त तंत्र को समझने-समझाने के लिए परमोपयोगी मानी जाती है। पाशुपत, शैव, कालामुख, कापालिक आदि विभिन्न संकीर्ण सम्प्रदायों में बँटकर शिवशवित उपासना जीवित तो रहीं लेकिन लेखन दृष्टि से उल्लेख्य कार्य नहीं कर सकीं।

वैष्णवधर्म को जो बहुचर्चित निगमागममूलक सम्प्रदाय है और जिनका भारतीय साहित्य पर अत्यधिक प्रभाव लक्षित होता है उनमें दो के प्रवर्तक आचार्य इसी काल खंड के महान् प्रदेय हैं। प्रथम है द्वैतसिद्धांत के मन्त्यापक मध्वाचार्य जिनका उपस्थिति काल (११९९-१३०३ ई.) माना जाता है। दक्षिण भारत में स्थित 'उडुपी' नगरी ने ऐसा चितक आचार्य दिया जिसने शैवधर्म का परित्याग कर ब्रह्मसम्प्रदाय की नींव डाली। शंकराचार्य के अद्वैतवाद और रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद-दोनों का विरोधात्मक खंडन इन्होंने पूरी शक्ति से किया और अपने मत-प्रतिपादन के लिए श्रीमद्भागवतपुराण से सामग्री ली। वायु-अवतार मध्वाचार्य ने अनेकानेक ग्रंथों की रचना की जिनके मूल में उद्देश्य निहित था-मायावाद का खंडन और द्वैत सिद्धांत का प्रचार-प्रसार। इनकी अद्भुत चितन-साधना के परिणामस्वरूप करीब ३७ ग्रंथ वैष्णव साधकों को मिले। 'गीता भाष्य', 'भागवत तात्पर्यनिर्णय', 'विष्णुतत्त्वनिर्णय', 'गीता तात्पर्यनिर्णय', 'तत्त्व सार संग्रह' आदि ग्रंथों में इनका पांडित्य, अगाध विद्या और गम्भीर विश्लेषण क्षमता देदीप्यमान है। चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में जयतीर्थ ने अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन मध्वाचार्य लिखित भाष्यों पर वृत्ति ग्रंथों के प्रणयन और द्वैत सिद्धांत के विस्तार प्रचार में किया। इन्होंने मौलिक और टीकापरक, दोनों प्रकार के ग्रंथ लिखे। 'प्रमाण पद्धति' और 'वादावली' जैसे मौलिक ग्रंथों से इन्होंने अद्वैत मत पर प्रबल प्रहार किया। इनके 'तत्त्वविवेक', 'तत्त्वसंख्यान', 'प्रमाणलक्षण', 'न्यायदीपिका', 'गीतातात्पर्यनिर्णय व्याख्या' आदि ग्रंथ द्वैतमत जिज्ञासुओं के लिए मार्गदर्शक हैं।

द्वितीय आचार्य विष्णुस्वामी हुए जिन्होंने रुद्र सम्प्रदाय की उद्भावना और प्रवर्तन किया। इनका अविभावित काल अद्यावधि निर्णित नहीं हुआ, पर नाभादास कृत 'भक्तभाल' से यह ज्ञात होता है कि संत ज्ञानदेव इनके संप्रदाय में दीक्षित थे। यदि ज्ञानदेव और मराठी के संत कवि ज्ञानदेव दोनों अभिन्न हैं और मराठी संत कवि का उपस्थिति काल (१२७५-१२९६ ई.) प्रमाणित होता है तो निश्चय ही विष्णुस्वामी और मध्वाचार्य दोनों का समकालीन होना मान्य है। शङ्खपुराण के आलोक में विष्णुस्वामी इसी शुद्धाद्वैतमूलक वैष्णव दर्शन के आदि प्रवर्तक सिद्ध होते हैं जो दीर्घकाल तक अदृश्य हो गया था। यदि वल्लभाचार्य जैसे

भक्त, कवि और दार्शनिक की निष्ठा न मिली होती तो वह अदृश्य लुप्त ही बना रहता और हिंदी कृष्णभक्ति साहित्य व साधना का रूप सर्वथा भिन्न होता। यह ज्ञातव्य है कि विष्णुस्वामी रचित किसी ग्रंथ का स्पष्ट संकेत कहीं प्राप्त नहीं होता।

इस कालखंड में श्री सम्प्रदाय किशोरावस्था को प्राप्त हो चुका था। इसके आद्य आचार्य रंगनाथ मुनि, यामुन और रामानुज आचार्य ने विशिष्टाद्वैत मत की स्थापना के लिए जिन रत्नस्वरूप ग्रंथों का प्रणयन किया था, उनपर भाष्य, वृत्ति और व्याख्या-लेखन का कार्य शेष रह गया था—जो खुसरो कालीन ग्रंथकारों के हाथों परिपूर्ण हुआ। वरदाचार्य (१२००—१२७४), सुदर्शन सूरिवेंकटनाथ (१२६९—१३६९), लोकाचार्य (१२६४—१३२७) आदि के नाम इसी दृष्टि से विशेष-उल्लेखनीय हैं। इस मत के आचार्यों ने एतद्विषयक दार्शनिक साहित्य का सृजन कर इसे स्थायित्व तो दिया पर पारस्परिक मतवैभिन्न्य के कारण अनेक शाखाएँ निकल पड़ीं। शाखा-निर्माण का आधार भाषा भी था। संस्कृत प्रेमी आचार्यों ने ‘बड़कलै’ और शुद्ध तमिल पक्षपातियों ने ‘टैकलै’ मत को जन्म दिया। टैकलई मत के उद्भावक थे श्री लोकाचार्य ने, जिन्होंने १८ रहस्य ग्रंथों की रचना की। कहा जाता है कि श्रीरग मंदिर की रक्षा करने का प्रयत्न सन् १३२७ ई. में किया था। अंततः ये मुसलमान आक्रमणकारियों के हाथों वीर गति को प्राप्त हुए। इन्होंने कर्मानुष्ठान मुक्ति प्रपत्ति का प्रतिपादन किया। सुदर्शनसूरि ने रामानुजाचार्यकृत श्री भाष्य पर एक अत्यंत उपयोगी व्याख्या ग्रंथ श्रुत ‘प्रकाशिका’ लिखा। वेदार्थ संग्रह तथा श्रीमद्भागवत पर लिखी ‘तात्पर्यदीपिका’, ‘शुकपक्षीय टीका’ भी अवलोकनीय हैं। वेदांताचार्य केवल आचार्यवुद्धि और दार्शनिक चित्तन लेकर नहीं आविर्भूत हुए प्रत्युत एक सृजनकार की कल्पना कवित्व-शक्ति के साथ भी। यही कारण है कि इनको श्री सम्प्रदायवादी जितना अपना मानते हैं उतना ही कवि वर्ग भी। वेंकटनाथ उस शाखा के समर्थक थे जिसे ‘बड़गलई’ की संज्ञा दी गई है। पददृष्टि से लोकाचार्य वेंकटनाथ की तुलना में श्रेष्ठतर थे, पर दर्शन-चित्तनगत उपलब्धि की दृष्टि से वेंकटनाथ अग्रतर थे। तमिल और संस्कृत दोनों में सम्भावेन अधिकार रखने से इन्होंने विपुल ग्रंथों की रचना की। इनके ‘तत्त्वटीका’, ‘तात्पर्यचंद्रिका’, ‘न्यायदशक’, ‘परमतंभंग’, ‘वेदांतकौस्तुभ’ जैसे दर्शन प्रतिपादक ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। इनकी उपलब्धियों ने ही तत्कालीन विद्वत्समाज को ‘सर्वतंत्र स्वतंत्र कविताकिंकर्ता सिंह’, आदि से इन्हें विभूषित करने को प्रोत्साहित किया था। इस तरह ये खुसरो कालीन भारत के देदीप्यमान नक्षत्र हैं।

साहित्य

जहाँ तक साहित्य-सृजन का प्रश्न है, यह निर्विवाद है कि विभिन्न साहित्य-विधाओं में लेखन-कार्य होता रहा। तत्कालीन राजनीतिक अस्थिरता, आमूलचूल

परिवतन, सामाजिक उलट-फेर ने सृजनकर्ताओं के समक्ष कोई दुरंत बाधा नहीं खड़ी की। परिणामतः साहित्य-साधना भारत के प्रत्येक क्षेत्र में किसी न किसी रूप में अवश्य होती रही। इस कालखंड में प्रवंध काव्य और नाट्यलेखन-परम्परा को अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक बल मिला। यदि सोमेश्वर का काल ११७९-१२६२ ई. है तो निस्संदेह ये अमीर खुसरो के समकालीन माने जा सकते हैं। इनका ऐतिहासिक प्रवंध काव्य 'कीर्ति कौमुदी' तत्कालीन सुधी समीक्षकों के समक्ष अवश्य आ गया था। इसकी विशेषता चम्पू और प्रवंध काव्य के तत्त्वों के समन्वय में लक्षित होती है। दूसरा प्रवंध काव्य कविवर सर्वानिंद ने लिखा जिसमें गुजरात के जगडूशाह की दानवीरता और उदारता को स्थायित्व देने का प्रयत्न है। विश्वनाथ कविराज उन दिनों 'राघवविलास' और 'नरसिंहविजय' नामक प्रवंधात्मक कृतियाँ पूरी कर चुके थे। विशिष्टद्वैतावादी साहित्य के उन्नायक, सुप्रसिद्ध तार्किक, दार्शनिक वेदांतचार्य ने अनेक काव्य ग्रंथों की रचना की जिनमें 'संकल्प सूर्योदय', 'पादुकासहस्र', 'हंसदूत', 'रामाभ्युदय' और 'यादवाभ्युदय' काव्य दृष्टि से अनुपेक्ष्य हैं। 'यादवाभ्युदय' मूलतः कृष्णलीलाओंका दार्शनिक पुनर्गणि है। इनका 'हंसदूत' काव्य, संदेश काव्य परम्परा का परिपोषक है और परवर्ती वामनभट्ट, वाण, रूपगोस्वामी आदि कवियों के लिए प्रेरक-मार्गदर्शक। इन काव्यग्रंथों के अतिरिक्त आचार्य विश्वनाथ कविराज कृत 'कुवलयाश्व' का नामोल्लेख आवश्यक है। यह शृंगार रसात्मक प्रवंध काव्य प्राकृत भाषा में है।

आलोच्य कालखंड में कुछ नाटक भी लिखे गए जिनमें रविवर्माकृत 'प्रद्युम्नाभ्युदय' और जयसिंहसूरि लिखित 'हम्मीर मदर्मदन' के नाम संकेत्य हैं। विश्वनाथ कविराज ने, जैसा कि 'साहित्यदर्पण' में संग्रहीत उदाहरणों के अनुशीलन से जात होता है, 'प्रभावती परिणय' और 'चंद्रकला' नाट्य-कृतियों से अपने को नाटककार सिद्ध करने का प्रयत्न किया। ये शृंगाररसपूर्ण कृतियाँ अभी तक अप्राप्त हैं। यह ध्यातव्य है कि विश्वनाथ कविराज की ख्याति का मूलाधार नाट्यकृतियाँ नहीं, प्रत्युत एक अलंकार ग्रंथ है—साहित्यदर्पण। इस लोक-प्रिय एवं बहुचर्चित ग्रंथ की विशेषता है काव्य-साहित्य-विषयक सभी विषयों का एकत्र विवेचन-प्रतिपादन। यह आचार्य मम्मटकृत 'काव्यप्रकाश' और पण्डित-राज जगन्नाथ रचित 'रसगंगाधर' इन दोनों के मध्य विराजता है। कविहृदय-संपन्न कविराज को इस ग्रंथ के आलोक में मम्मट का अनुयायी मानना चाहिए और रसगंगाधरकार के प्रसंग में मार्गदर्शक एवं प्रेरक। 'यदि 'साहित्यदर्पण' न रचा गया होता तो भारत के पूर्वी प्रांतों के संस्कृत काव्य-नाट्यप्रेमी, नाट्यशास्त्रों के विषयों से अपरिचित ही रह जाते।'^२ 'कवि सूक्ति रत्नाकर' की उपाधि से

२. डॉ. सत्यन्रतसिंह द्वारा सम्पादित 'साहित्य दर्पण': पृ. ८४।

मंडित कविराज का यह प्रदेय इस अवधि की अनुपम उपलब्धि है।

तत्कालीन जैन कवियोंने लेखन की दिशा में कई प्रयत्न किए। खुसरो के समकालीन अभ्यदेव ने 'जयतविजय' में मगध नरेश का चरित्र एवं विजयोल्लास प्रस्तुत किया। जिनदत्तसूरि के शिष्य और अगहिल पट्टन (गुजरात) के राजा बीलदेव के सभापंडित अमरचंद्रसूरि ने अपनी शक्ति 'वालभारती' की रचना में प्रदर्शित की जो वस्तुतः महाभारत का लवु संस्करण है। यह ग्रंथ १८ पर्वों, ४४ सर्गों और सात हजार श्लोकों का है। महाभारत का ही आख्यान लेकर १८ सर्गों में देव प्रभसूरि ने पाण्डवचरित लिखा; यदि वस्तुपाल का काल तेरहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध निश्चित होता है तो अरिंसिंह का 'सुकृत संकीर्तन' और वालचंदसूरि का 'वसंत विलास' दोनों समकालीन कृतियाँ हैं। वीर नंदी नामक जैन कवि ने सप्तम जैन तीर्थकर चंद्रप्रभ की उज्ज्वल जीवनगाथा 'चन्द्रप्रभचरित' में पेश की जो १८ सर्गों में समाप्त होती है। १३०६ ई. में आचार्य मेरुत्तुंग का सुविख्यात 'प्रबंध चितामणि' तैयार हुआ जो पाँच प्रकाश में निवद्ध है। वर्धमानपुर नामक नगरी में रचित यह ग्रंथ अनुशासित है एक उद्देश्य से—वह है ज्ञानवर्धक मंगलकारी शास्त्रीय सामग्री का एकत्र संग्रह संगुफन।

उपर्युक्त अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन दार्शनिकों, तार्किकों, कवियों, धर्मचार्यों तथा साहित्य-सेवियों के सुप्रयत्न से साहित्य की विशाल निधि निर्मित हुई, साहित्य को विभिन्न विधाओं का खूब विकास हुआ। किंतु ऐसे ग्रंथों का नितांत अभाव रहा जिन्हें मौलिक, नूतन दृष्टि-परिचायक एवं गौरव-स्तंभ कहा जाता है। सृजन कम हुआ, लेखन अधिक। टीकाकारों, व्याख्याकारों एवं भाष्यकर्ताओं की शक्ति पूर्ण विकास पर लक्षित हुई; फलस्वरूप टीकात्मक पोथों का ढेर लग गया।³

संगीत कला

समीक्ष्य युग, संगीत कला की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण और गरिमामय प्रमाणित होता है। उत्तर भारतीय संगीत और ईरानी संगीत—दोनों को समन्वित करने का जो प्रयत्न अमीर खुसरो तथा अन्य संगीतकारों द्वारा हुआ वह संगीत

3. ... Though the production is immense and almost every branch of literature is represented. There is no originality.
The History and Culture of the Indian People; Vol. VI, P. 464.

के इतिहास में अभूतपूर्व घटना है। एक ओर ईरानी तथा परंपरालब्ध भारतीय रागों के आनुपातिक सम्मिश्रण से मज़ीर, ईमन, फिरदोस्त, साजगरि, जिल्फ, गनम, मनमू, अशशक, बकहरम, मुवाफिक, फरगजा, एमनबसन्ती जैसे नवीन रागों, तथा सितार, तबला जैसे वाद्ययंत्रों का आविष्कार हो रहा था; दूसरी ओर प्राचीन भारतीय संगीत पद्धति, उसके राग-विधान, गायन-प्रणाली की सुरक्षा की चेष्टा हो रही थी। इस्लामी प्रभावमुक्त, सर्वथा विशुद्ध भारतीय संगीत पद्धति को लेकर चलनेवालों में पं. शारंग देवाचार्य, महाराज हम्मीर, ज्याय सेनापति (१२४९ ई.), गोपालनायक आदि स्मरणीय हैं। पं. शारंगदेव ने 'संगीत रत्नाकर' का, ज्याय सेनापति ने 'नृत्तरत्नावली' और 'वाद्यरत्नावली' का, महाराणा हम्मीर ने 'शृंगारहार' का और जैनमतानुयायी पाश्वर्देव ने 'संगीत समयसार' का प्रणयन किया। पाल्कुरिकि सोमनाथ का 'पण्डिताराध्यम्' और अल्लराज कृत 'रसतत्त्व समुच्चय' भी तत्कालीन संगीत ग्रंथ हैं। गोपालनायक ने अपने 'तौरेंत्रिकसार' ग्रंथ में न केवल भारतीय अपितु ईरानी संगीत की विशेषताओं का भी उद्घाटन किया है। इन ग्रंथकारों और ग्रंथों के अतिरिक्त जो उल्लेख्य हैं उनमें हैं प्रथम श्री विद्यरण्य माधवाचार्य और उनकी कृति 'संगीत सार' जिसमें मेलपद्धति का निरूपण है। यह ग्रंथ १३३६ ई. के आसपास की रचना है जो ग्रंथकार को ईरानी संगीत से प्रभावापन्न प्रमाणित करती है। इसके आधार पर यह सहज ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि फारसी संगीत-पद्धति पश्चिमोत्तर भारत की यात्रा समाप्त कर दक्षिण भारत में अपने चरण रख रही थी।

कुछ लोगों की धारणा है कि भारतीय संगीत-पद्धति और ईरानी-संगीत-पद्धति दोनों का संपर्क और पारस्पारिक आदान-प्रदान संगीत कला का न्हास है। कैप्टन डे ने अपने ग्रंथ 'म्युजिक ऑफ इंडिया' में इसी तरह का मत व्यक्त किया है।^४ ऐसी धारणा निश्चित नहीं है। वास्तविकता यह है कि भारतीय व विदेशी संगीत के सम्मिलन से हिंदुस्तानी संगीत की बुनियाद पड़ी जो कालांतर में अत्यंत आल्हादकारी, लोकरुचि सम्मत और भव्य साबित हुआ। जो भारतीय संगीत अतिशास्त्रबद्ध, अतः लोकविमुख और दुर्बोध होता जा रहा था वह ईरानी संगीत की विशिष्टताओं को ग्रहण कर पुनः सबल हो उठा और लोकचित्त का अनुरंजन

4. The most flourishing age of Indian music was during the period of the native princes, a little before the Mohamedan Conquest, While the advent of the Mohamedans declined. Indeed it is wonderful that it survived at all. Capt. Day : Music of Southern India; P. 3.

करने में समर्थ हो गया। सचमुच, यह संगीत कला की असाधारण उपलब्धि मानी जाएगी।

ऊपर भारतीय संगीत पद्धति के समर्थ आचार्यों और उनकी प्रमुख कृतियों का जिक्र किया जा चुका है। अब अलाई राज्य के ईरानी पद्धति से गानेवालों का परिचय दिया जाता है। ऐसे कलाकारों में सर्वश्रेष्ठ हैं अमीर खुसरो जिनकी विलक्षण प्रतिभा और अटूट साधना ने भारतीय संगीत में क्रांति पैदा कर दी। 'तारीखे फीरोजशाही' के रचयिता के अनुसार 'संगीत तथा संगीत की रचना में वह बड़ा दक्ष था . . . यह एक अद्वितीय व्यक्ति था और अपने समय का एक विचित्र तथा अद्भुत् पुरुष था।' दरबारों द्वारा आयोजित महफिलों में मुकरियों और गजल गानेवालों की अच्छी प्रतिष्ठा थी। महमूद बिन सकका ईसुनशिया, मुहम्मद मुकरी और इसा खुदादी मिजमारी उस युग के अच्छे कलाकार थे जिनके गले में दाऊद की आवाज थी।^५ इनके अतिरिक्त चंग, रवाब, कमांचा, मिस्कल, नौबत आदि बजानेवाले धुरंधर कलाकार थे पर उनका पूर्ण परिचय नहीं मिलता।

फारसी अरबी साहित्य

यह आश्चर्यजनक बात है कि फारसी भाषा ने, कुरान की भाषा न होने पर भी, खूब तरक्की की। आलोच्यकालीन मुस्लिम शासकों और सुलतानों के संरक्षण-भाव तथा प्रेमपूर्ण समर्थन से फारसी भाषा और इसके कवियों और लेखकों को बेहद प्रोत्साहन मिला। तत्परिणामस्वरूप इसके साहित्य भाण्डार में पूर्ण समृद्धि आई और भाषा को लोकप्रियता मिली। गियासुदीन बलबन से खिलजी काल तक इसका स्वर्णयुग माना जा सकता है जिसमें अमीर खुसरो जैसी बेनजीर प्रतिभा पैदा हुई। भारतीय फारसी कवियों में सर्वोच्च स्थान है इसी 'तूती-ए-हिन्द' का। इस युग की दूसरी विभूति अमीर हसन हैं जिन्होंने अनेकानेक गद्य-पद्य ग्रंथों की रचना की। इनका पूरा नाम ख्वाजा नज्मुद्दीन हसन है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार बरनी लिखते हैं, 'अमीर हसन में अनेक उत्तम गुण तथा नैतिकतापूर्ण बातें पाई जाती थीं। उसका चरित्र बड़ा ऊँचा था और वह सुलतानों तथा देहली के आलिमों एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों के विषय में जानकारी रखने, बुद्धिमत्ता, विद्वत्ता, धर्मनिष्ठता तथा सूफियों की भाँति जीवन व्यतीत करने में बड़ा प्रसिद्ध था। उसे संसार से कोई प्रेम न था और समस्त सांसारिक झगड़ों से अलग सुख-सम्पन्नतापूर्ण जीवन व्यतीत करता था।'^६ अमीर हसन अपने अध्यात्म गुरु शेख निजामुद्दीन औलिया की गोष्ठियों और सत्संगों में सक्रिय भाग लेते थे और शेख की वाणियों, प्रवचनों

५. सद्यद अतहर अब्बास रिजवी : खिलजी कालीन भारत : पृ. ११५

६. वही : पृ. ११२-

और नसीहतों को लिपिबद्ध करते जाते थे जो 'फवाईदुलफवाद' के नाम से प्रसिद्ध है। वह सूफियों के लिए आज भी पूज्य ग्रंथ बना हुआ है। अमीर हसन की सृजन-क्षमता का प्रमाण दीवान और मसनवियाँ भी हैं।

इन दोनों महाकवियों के अतिरिक्त अन्य कई फारसी-सेवी काव्यकार हुए जिनमें, जियाउद्दीन वरनी के अनुसार, सद्गुद्दीन अली फखरुद्दीन कवास, हमीदुद्दीन राजा, मौलाना आरिफ, उबैद हकीम, शिहाब अंसारी, सद्रविस्ती आदि के नाम प्रमुख हैं। शफुद्दीन वू अली कलंदर ने, जिनकी मृत्यु खुसरो के देहावसान से दो वर्ष पूर्व हुई थी, कई ग्रंथ लिखे। इनके छारा रचित 'मकतूबात,' 'हिक्मतनामा' और 'हुक्मनामा-ए-शेख वू अली कलंदर' आदि मशहूर हैं। उन्हीं दिनों ख्वाजा मुहम्मद इमाम के सत्प्रयास से महवूवे इलाही निजामुद्दीन औलिया के उपदेशों और प्रवचनों का विशाल संग्रह तैयार हुआ जो 'अनवार-उल मजलिस' के नाम से प्रसिद्ध है। इनकी मृत्यु १३३५ ई. में हुई थी।

शेख निजामुद्दीन औलिया के आज्ञाकारी मुरीद और अमीर खुसरो के दोस्त जियाउद्दीन वरनी ने उस जमाने में खूब लिखा। 'तारीखे फीरोजशाही' के अतिरिक्त भी इन्होंने अनेकानेक ग्रंथ लिखे। यदि मीर खुर्द^७ की बात सच मानी जाए तो इनकी सात कृतियाँ और भी मानी जा सकती हैं। ये हैं—'सनाय मुहम्मदी,' 'सलाते कवीर,' 'इनायत-नाम-ए-इलाही,' 'मआसिरे-सादात,' 'हसरत-नामा,' 'फतवा-ए-जहाँदारी' और 'तारीखे बरमकियान'। इनमें 'सलाते कवीर' 'इनायतनाम-ए-इलाही' और 'मआसिरे सादात' आज तक अज्ञात और अनुपलब्ध हैं। 'हसरतनामा' भी कहीं अपनी पूर्णता में प्राप्त नहीं है। 'सहीफ-ए-नाते मुहम्मदी' वरनी की कैदी जिंदगी की देन है। इसका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश है तीसरा खंड। तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थिति की जानकारी के लिए इसका अवलोकन आवश्यक है। 'इखबारे बरामेका' मूलतः एक अरबी इतिहास का अनुवाद है जिसमें दानवीर बरबक मंत्री की जीवन कथा है। 'फतवा-ए-जहाँदारी' में राज्यव्यवस्था-संवंधी सिद्धांतों, नीतियों और अधिनियमों का सविस्तर वर्णन है जो वरनी का व्यक्तित्व उभारता है—एक राजधर्म शास्त्रप्रणेता का, इतिहासकार का नहीं।

फारसी की तुलना में अरबी में लेखन-कार्य बहुत ही कम हुआ है। जिन लोगों ने इस दिशा में प्रयत्न किए उनमें अबू बकर इशशाक प्रथमोल्लेख्य हैं जिन्होंने

७. सय्यद अतहर अब्बास रिज़वी : आदि तुर्ककालीन भारत : पृ. १०५

८. वहीं : पृ. १०५

इस्लाम धर्म के प्रचारार्थ अनेकानेक ग्रंथ लिखे। इश्शाक का दूसरा नाम था इब्नेताज इनके अतिरिक्त जो दो-चार ग्रंथकार मिलते हैं वे अमीर खुसरो काल में कलम पकड़ने की कोशिश कर रहे थे।

इस तरह फारसी और अरबी की लेखनगत उपलब्धियों को देखने पर यह ज्ञात होता है कि फारसी अरबी को छोड़कर बहुत आगे निकल चुकी थी, और यह कि तत्कालीन अधिकांश लेखन मूलतः धार्मिक अतः साम्प्रदायिक रहा और यह भी कि फारसी लेखकों ने रूढ़िवादिता, जड़ता, प्रतिगामिता और प्रतिक्रियावादिता से मुक्त होने की जितनी चेष्टा को उतनी अरबी के उन्नायकों ने नहीं।

आलोच्य कालखण्ड में लोकभाषाएँ, शक्ति—श्री—संपन्न होने लगी थीं। संस्कृत जनता का साथ छोड़ रही थी, फलस्वरूप लोकभाषाओं में जनवाणी मुखरित होने लगी। आत्मलीन संतों, ज्ञानी भक्तों एवं ईश्वरोपासकों के सत्प्रयास से मराठी आदि भाषाओं को गौरव मिला। मराठी साहित्य के अन्तर्गत वारकरी सम्प्रदाय और महानुभाव पंथ दोनों की पूर्ण स्थापना-प्रतिष्ठा इस युग में हो चुकी थी। संत ज्ञानेश्वर की 'ज्ञानेश्वरी' (१२९० ई.), चांगदेव पासष्टी (१२९० ई.), अमृतानुभव; सोपानदेव, मुक्ताबाई, चांगदेव की लालित्यपूर्ण वाणियाँ इसी अवधि में श्रवण गोचर हुईं। भक्ति साधना के पुरस्कर्ता संत नामदेव भी यहाँ स्मरणीय हैं। इसी तरह अन्य भारतीय लोकभाषाओं में भी सृजन कार्य हुआ।

इस विहंगावलोकन से यही ज्ञात होता है कि खुसरो काल में शास्त्रकला के विभिन्न अंगों की अच्छी साधना हुई जिससे परवर्ती साधकों और सृजनकर्ताओं के लिए मार्ग प्रशस्त और आलोकित हुआ। तत्काल की लेखन गत उपलब्धियों को नगण्य और उपेक्ष्य नहीं माना जा सकता। निष्कर्षतः 'तूती-ए-हिंद' के युग में निराश, हतप्रभ एवं पदाक्रांत भारतभूमि, साधना-दृष्टि से अनुर्वर थी, यह कहना तर्कसंमत नहीं।

● ● ●

अमीर खुसरो : एक मुहिल्बे-वतन शायर

प्रा. जी. डी. एस्. शेख 'सिंहाव'

कालिदास के बाद हिंदोस्तान में अगर कोई
अजीम शायद पैदा हुआ है तो वह फारसी और
हिंदी-उर्दू का शायर अमीर खुसरो है जो सन
१२५३ ईसवी में पटियाली, जिला ईटा में पैदा
हुआ और सन १३२५ ईसवी में देहली में
'राही-ए-अदम' हुआ।

जब हम दसवीं सदी के ईरान के सबसे अजीम
'रजिमया-निगार' (Epic-poet)' फिरदोस
के बाद से आज तक तकरीबन् एक हजार साल
की फारसी शायरी का जायजा¹ लेते हैं तो
हमें एपिक (Epic) और रूमानी मस्नवी के
हजारहा शायरों में चार शायर ऐसे नज़र आते
हैं जो मिनारा कद² हैं और अनमिट शोहरत

1. स्वर्गवासी, 2. महाकवि, 3. सिंहाव-
लोकन, 4. गगन-चुम्बी-व्यक्तित्व।

के मालिक हैं। इनमें से दो ईरान के हैं यानी 'निजामी' और 'जामी' और दो हिंदोस्तान के यानी 'अमीर खुसरो' और 'फैजी'। इनमें से हर एक अपने जमाने का 'जीनियस' रहा है।

खुसरो जामे-अ-सिफात^५ इन्सान था। उसकी जात बड़ी तहदार और पहलूदार थी—एक धनक की तरह जिसमें मुख्तलिफ रंग थे और हर रंग अपनी जगह मुकम्मिल और दिलो-नज़र को अपनी तरफ खींचनेवाला था। गोया—

करिश्म: दामने दिल भी कशद के जा ईजास्त !

वह ब-यक-वक्त एक अजीम मस्नवी-निगार, एक हसीन वज्द आफरीं गजल-गो, एक बिलकश इन्शाइया^६—निगार व अदीब, मुख्तलिफ जबानें जाननेवाला माहिरे-लिसानियात^७, मसीहा-नफस मुगन्निया^८, पैगम्बरे-मोसीकी^९, एकताए-जमाँ^{१०}—मोसीकार जिसने इस शोअबे में कई ईजादें कीं, शाहने-देहली का नदीमे-खास और मलिकुश्शुअरा, अवाम का लोकगीतों, पहेलियों और मुकरनियों का महवब शायर और दुनिया-ए-रुहानियत के सबसे अजीम शहनशाह ख्वाजा निजामुद्दीन (र. अ.) का सबसे जियादा चहेता मुरीद व शागिर्द था। गोया हिंदोस्तान की सदियों की तहजीब ने सिमटकर एक इन्सानी पैकर का रूप इखितयार कर लिया था जिसका नाम था अमीर खुसरो !

कहते हैं कि अमीर खुसरो ने अपनी ७५ साला हयात में ग्यारह बादशाहों को देहली के तख्त पर 'जल्वा अफगन'^{११} होते देखा है। उनमें से सात ताजवरों का वह नदीम व मुसाहिबे-खास और मलिकुश्शुअरा रहा है। वह उनके दरबारों और महफिले-ऐशो—^{१२} निशात में शरीक होता, कसीदे और गजलें सुनाकर बज्म की रौनक बढ़ाता, उनके साथ सैर व सियाहत करता, शिकारगाहों में जाता, यहाँ तक कि उनके साथ यल्गारों में भी शरीक होता और उनकी फुतूहात^{१३} के कारनामों को अपने मूए-कलम से आबो-रंग देकर उन्हें लाफानी मस्नवियों में ढालकर, दरबार में बादशाह के हुजूर में पेश करता और दिलेर^{१४} और दरियादिल^{१५} बादशाह भी उस यकेताए जमाना शायर की अनमोल काविशों^{१६} के बदले हाथी के वजन का सोना और चांदी इनआम में देकर उसकी हौसला-अफजाई^{१७} करते और इस तरह उसकी सलाहियतों की दाद देते !

५. बहुत-सी खूबियोंवाला, ६. समीक्षक, ७. भाषा-शास्त्र का पंडित, ८. जादू जगानेवाला गायक, ९. संगीत का प्रेषित, १०. राजकवि, ११. विराजमान १२. विलासिता, १३. विजय, १४. बहादुर, १५. उदार, १६. रचनाएँ, १७. हिम्मत बढ़ाना.

खुसरो 'दिन भर तो मादी-दुनिया' के बादशाह के दरबार में गुजारता लेकिन शाम होते ही वह 'रुहानी दुनिया' के शहनशाहे-अजीम हजरत ख्वाजा निजामुद्दीन अबलिया-मेहवूबे-इलाही के दरबार (तकिया) में जा पहुँचता और अपने मुर्शद के मुकद्दस कदमों पर वसद खुलूस^{१०} अपने दिल को झुका वह अपने 'पीरे-तरीकत' ^{११} से रुहानी तआलीम हासिल करता, 'महफिले-समाइ' ^{१२} में शरीक होता और वज्द व कैफ के आलम में रक्स करता, अपने महवूब के इश्क में वालेहाना अंदाज में आशिकाना गजलें गाता और अहले-महफिल के सीनों में इश्क की चिंगारियाँ भर देता और वे माहिए-बे-आव ^{१३} की तरह तड़पने लगते। बुजुर्ग-मुर्शद भी अपने शार्गिद को बहुत चाहता और उसपर नजरे-फैज ^{१४} डालकर 'रुहानी-आस्मानों' की सैर कराता और फछ से कहता कि "रोजे-हश्र" ^{१५} अगर खुदा मूझसे पूछेगा कि दुनिया से क्या लाया है? तो मैं फौरन् कह दूँगा कि अमीर खुसरो को लाया हूँ।" इसी तरह वह दुआओं में यही कहता कि "अय खुदा-ए-करीम! अमीर खुसरो के सोजे-दिल" ^{१६} के तुफ़ेल मेरी वस्तिशश कर!" यह वह तारीफ व सताइश ^{१७} है, यह वह 'सिला' है जिसके सामने हाथी भर सोना-चाँदी तो क्या, हाथी भर हीरे-जवाहर की भी कोई कीमत नहीं है। कहा जाता है कि उन्हें अपने पीर से इस कदर मुहब्बत थी कि जब पीर का इंतकाल हुआ तो खुसरो ने अपनी सारी जायदाद लुटा दी, दुनिया और दरबारदारी छोड़ दी और अपने पीर के मजार पर मुजावर बनकर बैठ गया और उसी गम में छः माह के अंदर इस दुनिया से कूच कर गया और अपने मुर्शद के पाइंती मदफून हुआ।

इन दोनों दरबारों के अलावा एक और भी दरबार था और वह था अवामी-जवान, ^{१८} और अवामी-शायरी ^{१९} का दरबार। अवामी-गीतों, दोहों, पहेलियों, चुटकुनों और मुकरनियों का दरबार-अवामी दुनिया और अवामी शायरी के उस दरबार का अमीर खुसरो हकीकत में बादशाह था। वह लोगों के दिलों पर हुक्मरानी कर रहा था। अमीर-गरीब, बड़े-छोटे, बड़े-जवान, बच्चे-सभी उसको चाहते और उसकी दिल से इज्जत करते। वह अवाम का प्यारा शायर था। शाही दरबार से लेकर ख्वाजा के दरबार तक और शहर के गली कूचों में अमीर की अवामी (हिंदी-उर्दू) शायरी की धूम थी। रास्ते में बच्चे उसका दामन पकड़ लेते और पहेलियाँ पूछते और जब वूँझ लेते तो तालियाँ बजा-बजाकर खूब शोर मचाते, पनघट पर चंचल पनहारनियाँ सवालात करतीं, १८. भौतिक-जगत, १९. आध्यात्मिक जगत्, २०. अति श्रद्धा से, २१. मार्ग दिखाने-काला गुरु, २२. गायनसभा, २३. जल-बिन मछली, २४. कृपादृष्टि, २५. क्यामत के दिन, २६. हृदय की वेदना, २७. प्रशंसा, २८. लोक-भाषा, २९. लीक काव्य

मुख्तलिफ अशिया^{३०} के नाम लेतीं और जब तक अमीर उन नामों को अशआर में बाँधकर 'मुकरनी' न सुनाता वे उसे पानी नहीं पिलातीं ! गली कूचों में तवायफ मुगन्नी और फनकार खुसरो को पकड़कर उसके ईजाद किए हुए नित नए राग, गीत और तराने उससे सीखते । जहाँ कोई नई मुकरनी, पहेली या गीत अमीर खुसरो की जबान पर आता तो फौरन रेडिओ की आवाज की तरह सारे शहर में और आस-पास के इलाके में फैल जाता; लोगों के दिलों पर नक्श हो जाता और जादू बनकर जबान पर चढ़ जाता । इस दरबार में सभी शरीक होते थे । यहाँ मजहब की पावंदी न थी—जात-पात का झगड़ा न था, अमीर-गरीब, रंगो-नस्ल का फर्क न था । यह तो अवामी शायर को शायरी थी, जो हर दिल में घर करती है । यह तो सूरज की किरन और चाँद की चाँदनी थी जो विना किसी तफरीक^{३१} के घर को रोशन करती है, बादलों और हवाओं की तरह थी जो हर जर्रे और हर शै को तरो-ताजा और पुर-बहार बनाते हैं ।

अमीर खुसरो पैदाइशी शायर था और गालिब की तरह वचपन ही से शायरी करने लगा था । दिल्ली की खड़ी बोली उसकी 'मादरो-जबान'^{३२} थी और फारसी उसकी 'पिदरी-जबान ।'^{३३} उसकी शब्दिसयत^{३४} हिमाला की तरह थी जहाँ से हिंदी और उर्दू की 'गंगा-जमना' बहती हो । मगर वह खड़ी बोली और फारसी के अलावा उस वक्त की पंजाबी, सिधी, तुर्की, अरबी और संस्कृत से भी अच्छी तरह वाकिफ था । कहते हैं कि उसने एक सौ के करीब किताबें लिखी हैं । उनमें से बाज़ मस्नवियाँ और दीवान शाया हो चुके हैं । दूसरी तस्नीफात^{३५} में से सिर्फ उन्नीस-बीस किताबें मुख्तलिफ मुल्की^{३६} और गैर-मुल्की^{३७} कुतुब-खानों में बाकी रह गई हैं । कहा जाता है कि खुसरो ने तीन-चार लाख शेर फारसी जबान में कहे हैं और कमो-बेश उतने ही अशआर 'हिंदवी' (हिंदी-उर्दू) में कहे हैं । लेकिन उनका हिंदवी कलाम किताबी शब्द में मौजूद नहीं है । उसकी वजह यह है कि अमीर खुसरो फारसी मस्नवियों और कसीदों को इसलिए तहरीर कर लिया करते थे कि उन्हें दरबार में पेश करना पड़ता था लेकिन फारसी गजलों और खासकर 'हिंदवी' को अवामी चीज़ समझकर नज़र अंदाज करते थे । इसमें शक नहीं कि वह कागज पर उतरने के बजाय अवाम के दिलों पर नक्श हुआ करते थे । नतीजा ज़ाहिर है कि ज़माने की हवाओं ने कुछ इधर-उधर बिखेर दिया और बहुत कुछ अपने साथ उड़ा ले गई । बावजूद इसके कि वह सात बादशाहों के मुसाहिबे खास रहे हैं उनकी ज़िदगी हमेशा फकीराना रही । वह हज़रत

३०. चीज़ें, ३१. भेदभाव, ३२. मातृभाषा, ३३. पितृभाषा, ३४. रचनाएँ, ३५. देशी, ३६. विदेशी.

निजामुद्दीन अबलिया के सच्चे मुरीद थे और इस नाते वह अवाम के आदमी थे। वह उनके तीज-त्यौहारों, मेलों-ठेलों में उसी तरह शरीक होते थे और उन्हें उसी तरह जोशो-खरोश^{३७} से मनाते थे जिस तरह मामूली से मामूली हिंदोस्तानी उन त्यौहारों को मनाता है। वह अपने मुल्क से बे-इन्तहा मुहब्बत करते थे। उनकी हिंदवी शायरी विला-शुबाह इसकी रोशन दलील है लेकिन उन्होंने अपने फारसी कलाम में भी जा-बजा 'वतन-परस्ती' और 'एकजहती' का बड़े फछ और जोशो-खरोश से इजहार किया है जो जबाहरपारों की तरह उनकी मस्नवियों, कसीदों और गजलों में विखरे पड़े हैं। विल खुसूस उनकी फारसी मस्नवी 'नुह-सिप्हर' में यह लय काफी ऊँची और दिलपज्जीर^{३८} हो गई है जहाँ शायरन सिर्फ यह कहकर अपने वतन से बालेहाना-मुहब्बत^{३९} का इजहार करता है बल्कि उसको दुनिया भर के मुल्कों से बेहतर और बरतर करार देता है।

'नुह-सिप्हर' अमीर खुसरो की चौथी तारीखी मनस्वी है जो उसने हि. स. ७१८ में पूरी की जब उसकी उम्र ६८ साल की थी। इसमें उसने मुबारकशाह खिलजी की कामरानियों और शानोशीकत का तज़किरा^{३०} किया है। नौ आस-मानों की मुनासिबत से मस्नवी का नाम 'नुह-सिप्हर' है जो नौ अबवाब पर मुश्तमल^{३१} है और हर सिप्हर या बाब एक सत्यारे से मन्सूब है। इसमें तीसरा सिप्हर हमारे नुकत-ए-नजर से सबसे जियादा अहम है। इसमें खुसरो एक मुहिब्बेवतन^{३२} की हैसियत से हिंदोस्तान की तारीफ के गुन गाता है। इसकी आबो-हवा, फूल-फल, चर्दिं-पर्दिं, यहाँ के उलूम व फुनून, जबानों और विरहमनों की गैर-मामूली सलाहियतों की एक आशिके-वतन की हैसियत से तारीफ व सताइश करता है। इसकी बहर खुद खुसरो की ईजाद-कर्दाह^{३३} है। यानी इससे पहले और इसके बाद में भी शायद ही किसी ने इस बहर में मस्नवी कही हो! यह बहर 'रजज-मुसहस मतवी' है जो शेर-गोईके लिए मुश्किल है।

— ०० — | — ०० — | — ०० —
ना र र ना | ना र र ना | ना र र ना

यानी खुसरो ने हिंदोस्तान की बरतरी के इस्तदलाल^{३४} का जो तरीका इखितयार किया है वह शायराना है जो काफी दिलचस्प है और यही शायरी का कमाल है। इस बाब में कमो-बेश साढ़ेचार सौ शेर हैं जो मैंने तर्जुमा किए हैं लेकिन यहाँ निहायत ही इख्तेसार के साथ उसमें से चंद बातें पेश की जाती हैं। खुसरो कहता है

३७. उत्साह से, ३८. आकर्षक, ३९. अत्यधिक प्रेम, ४०. वर्णन-बखान, ४१. आधारित, ४२. देशभक्त, ४३. आविष्कृत, ४४. प्रमाण

कि 'रोम', 'खरासान,' और 'खुनत' तानाजन हैं कि हिंदोस्तान तारीक का मुस्त-हक कहाँ है? वाज़ यह कहते हैं कि हिंदोस्तान को दीगर मुल्कों पर तरजीह देते की ज़रूरत क्या है, तो उसके जवाब में मैं यह कहूँगा कि सबसे पहले इसके दो खास सबब हैं। एक तो यह कि वह मेरा पैदाइशी वतन है और खुद पैगंबर मुहम्मद (स्व. अ. व.) ने फर्माया है कि 'हुब्बुल'-वतनी ईमान की निशानी है। दूसरा सबब यह है कि इस मुल्क का बादशाह मुवारकशाह है जिसका सानी दुनिया में नहीं है।

असबातेमुल्के-हिंद ब-हुज्जत के जन्मत अस्त ।
हुज्जत हमा ब-कायदए-अकली उस्तवार ॥

इसके अलावा हिंदोस्तान की अजमत^{१०} और वरनरी के बहुत-से असबाब हैं। मसलन, मेरी नज़र में वह इस कुर्रए-खाकी पर 'जन्मत-नशान' है। इस दावे की दलील^{११} यह है कि जब आदम (अ. स.) को अपने गुनाह की पादाश में जन्मत से निकलकर इस सर-ज़मीन पर ज़िंदगी वसर करने का हुक्म सादिर हुआ तो उन्होंने सारी दुनिया में सर-ज़मीने-हिंद को क्याम के लिए इंतखाब किया। इसकी बजह यह थी कि इन्हें यहाँ की 'रुह-परवर' फजा, खुशगवार आबो-हवा, और 'मुअतदल'^{१२} मौसमों में जन्मत की खबियाँ नज़र आईं। अगर वह हिंदोस्तान की बजाए खरासान, अरबस्तान, रोम या चीन में क्याम कर्मति तो वहाँ की शदीद सर्दियाँ और गर्मियाँ उस 'परवर्द-ए-जन्मत' को हलाक कर देतीं और यह 'कुर्रए-खाक' 'अशरफुल-मखलूकात' के बजूद से महरूम हो जाता। इसके अलावा 'तावूस' (मयूर) को लीजिए, वह भी जन्मत का परिदा है और साँप भी। जब वह वहाँ से दुनिया में आए तो उन्होंने हिंदोस्तान को इसलिए, इंतखाब किया कि-

अगर फिर्दोस बर रुए जमीं अस्त ।
हमीं अस्तो हमीं अस्तो, हमीं अस्त ॥

ब-कौल अमीर खुसरो :

तरजीहे^{१३} मुल्के-हिंद ब-अकलज हवाए-खुश ।
बर रुमो-बर इराको-खिरासानो-कंदहार ॥

अब जब यह साबित हो चुका कि हिंदुस्तान 'जन्मत-नशान'^{१०} है तो आइए, इसकी आबोहवा पर नज़र डालें। हिंदोस्तान की आबोहवा खुरासान वगैरह मुल्कों से बेहतर है। इसके दस असबाब हैं।

१. यहाँ की सर्द हवाओं का लोगों पर बुरा असर नहीं पड़ता । जाड़ों में भी यहाँ का इन्सान एक हल्का-सा पैरहन पहनकर भी अपने आपको शेर की तरह गर्म महसूस करता है । इसके बर-अक्स, खिरासान^१ में प्याज के छिलकों की तरह दस लिबास पहनकर भी बदन बर्फ से ज़ियादा सर्द बन जाता है ।

२. यहाँ की गर्मियाँ भी इतनी सख्त नहीं होतीं । लोगों के लिए किसी शाख का गाया या दो गज की झोपड़ी काफी होती है ।

३. तीसरे यहाँ की आबो-हवा इस कदर 'मुअतदल' है कि किसी ग्रीव को कपड़ों के लिए हाथ फैला ने नहीं पड़ते । एक ग्रीव एक मामूली कम्बल में भी ज़िंदगी गुजार देता है । एक गङ्गरिया किसान एक 'बोसीदा'^२ चादर ओढ़कर चरागाह में रातें बसर कर देता है । सुबह-सवेरे नदी के ठंडे पानी में 'बरहमन' गुस्ल^३ करते हैं ।

४. यहाँ की सरजमीन हमेशा सर-सञ्ज^४ व शादाव रहती है ! और साल भर फूलों की बहार रहती है ! 'खिरासान' और दीगर मुल्कों की किस्मत में यह बात कहाँ ? वहाँ तो फूल दो तीन हफ्ते अपनी बहार दिखाकर इस तरह गुजर जाते हैं जिस तरह किसी पुल के नीचे से सैलाव^५ का पानी ग़ज़र जाए !

५. 'खिरासान' के फूलों में वह रंगो-बू कहाँ जो यहाँ के फूलों में है ।

६. वहाँ के फूल ज़रा भी मुझ्ति हैं तो उनकी बू गायब हो जाती है । इस के बर-अक्स हमारे यहाँ के फूल खुश्क होकर भी इस तरह महकते हैं जैसे 'मुश्क-नाफे'^६ हो !

७. वहाँ के मेवों में कोई अच्छे मेवे हैं तो वस 'अमरुद' और अंगूर हैं, लेकिन हमारे यहाँ जो मेवे हैं मसलन 'आम' वगैरह-उनकी मिसाल नहीं । और फिर इलायची, काफूर और 'करनफल'^७ वगैरह का जवाब कहाँ है ?

८. वहाँ के सारे फल हमारे यहाँ पाए जाते हैं लेकिन हमारे यहाँ के फल वहाँ नहीं हैं ।

९. इसके अलावा हमारे यहाँ दो ऐसे तोहफे हैं जो नायाब^८ हैं । पहला तो गरीबों का फल 'मौज़'^९ है जो और जगह नादिर है । दूसरा 'बर्ग-तम्बूल'^{१०} है जो फल की तरह बड़े नाज़ से खाते हैं ।

१. एक देशका नाम, २. फटी-पुरानी, ३. नहाते हैं, ४. हरी-भरी ५. बाढ़, ६. कस्तुरी की सुगंध, ७. लवंग, ८. अनमोल-विरले, ९. केला, १०. पान'

अ. खु.... २ ...

१०. पान का सानी दुनिया में नहीं है। लिहाजा वह अमीरों और शरीफों के जौक की चीज बन गया है। और बादशाहे-वक्त ने उसे पसंद फर्माकर उसकी कद्र और भी बढ़ा दी है।

अलगरज हिंदोस्तान न सिर्फ यह कि 'जन्मत-नशान' है और आबो-हवा के लिहाज से दूसरे मुल्कों से बेहतर और बरतर है बल्कि 'अक्लो-दानिश' व 'इल्मो-हिकमत' में भी वह दुनिया से मृमताज है।

तरजीहे-प्रहले-हिंदबर अहले 'अजम' हमः ।
दर जीरकी व दानिशो-दिलहाए-होशियार ॥

मैं जो कुछ कह रहा हूँ उस पर संजीदगी^१ से गौर करने की ज़रूरत है। हकीकत यह है कि इस सर-जमीन में जिसके अंदरूनी हालात आज भी नजर से ओझल हैं, वे-अंदाज इल्मो हिकमत के खजाने मौजूद हैं।

अगचि रोम और यूनान फलसफा और हिकमत के लिए 'मशहूर' हैं लेकिन हिंदोस्तान भी किसी तरह उनसे कम नहीं है। यहाँ 'मन्तिक'^२, 'इल्मे-नुजूम'^३ और 'इल्मे-कलाम' की फरावानी है। सिर्फ इल्मे फिकः की कुछ कमी है वरन् हर इल्म का खजाना विलखु-सूस 'उलमें-अक्ली (जिनका तआल्लुक मआकूलात से है) के कदीम खजाने भरपूर मौजूद है। यहाँ का विरहमन अरस्तू के कानून के दफतर की धज्जियाँ उड़ा सकता है।^४ 'तबीआत' 'रियाजत' और माजी व मुस्तकबिल के बारे में 'गैब-गोई'^५ या 'पेशीन-गोई'^६ में यहाँ के विरहमन इस कदर आगे बढ़े हुए हैं कि रोमियों और यूनानियों की मालूमात उनके सामने 'गर्द'^७ मालूम होती है। लेकिन चूंकि लोगों ने उनसे ये बातें हासिल करने की कोशिश नहीं की इसलिए वो 'पर्द-ए-खुफा'^८ में पड़े हुए हैं। मैंने इस सिलसिले में थोड़ी-बहुत 'जदो-जहद' की ओर उनके दिलों में राह पाई। मैंने अपनी 'इस्ते-अदाद' के मुताबिक उनसे मालूमात तलब की और उन्होंने भी मुझ से दरीग नहीं किया और अपने असरार का महरम बनाया। बाज़ ऐसे भी हैं जिनकी 'महालात' तक रसाई है लेकिन हर कसो-नाकिस के बस की बात नहीं। और जो 'असरार'^९ से आगाह हैं वो अपनी जबान बंद रखते हैं और अपने 'राज्ञहा-ए-कुहन को जो उन्हें सीना-व-सीना हासिल हुए हैं दूसरों पर ज़ाहिर नहीं करते।

१. ज्ञान-ध्यान, २. ज्ञान-सिद्धि, ३. गंभीरता से, ४. तर्कशास्त्र, ५. खगोल-शास्त्र, ६. आध्यात्मिक ज्ञान, ७. भविष्यवाणी, ८. धूल, ९. रहस्य के पर्दे में, १०. रहस्य

हाँ, जहाँ तक 'अल्हय्यात' या 'इरफाने हकीकत' का ताल्लुक है यहाँ अबल हैरान व खिरदमंद सर ब-गरेबाँ हैं। यहाँ न सिर्फ वो शशदर है वल्कि फलसफा भी इस राह में ठोकरें खाता फिरता है। कभी वह इल्लत व मआलूल के सहारे उसकी हकीकत समझने की कोशिश करता है और कभी वह जहान ही को कदीम तसव्वुर कर बैठता है। इस किस्म की कई बातें हैं जिन में वह उलझकर रह जाता है। अगर्चि वो लोग हमारी तरह दीनदार नहीं फिर भी बहुत सारी बातों में हमारी ही तरह अकीदा रखते हैं। वो भी खुदा की वहदत^१, उसकी हस्ती^२ और अदम के मोअतरिफ^३ हैं और यह कि उसने अदम से कायनात को पैदा किया और मौत के बाद फिर से जिलाने की कुदरत रखता है, यह कि खुदा रजाक^४ है और हर नेक व बद और हुनरमंद व बेहुनर को रिज्क पहुँचाता है, हर जानवर को जिलाता और मारता है। वह नेक व बद अलगरज तमाम अफआल का खालिक़ है। उसकी हिक्मत और उसका हुक्म अज्ञली व अबदी है। वह 'फाइले-मुख्तार' है और हर अमल पर कादिर है और हर जुड़व व कुल का अज्ञल से आलिम हैं। बरहमन अपनी तहकीक (अपनी अबल की रोशनी) की विना पर इन तमाम बातों का 'मिकर' हुआ है और दीगर लोगों की तरह झूठी बातों पर अडकर बैठ नहीं रहा। हिंदू उन लोगों से बदर्जहा बेहतर है जो खुदा के वजूद से मुनकिर हैं। मसलन् 'दहरिया'^५ खुदा के वजूद का कायल नहीं है इसके बर-अक्स बरहमन उसकी हस्ती का कायल है। 'सन्वियः'^६ खुदः की दुई का जिक्र करते हैं लेकिन बरहमन इस किस्म की बातें नहीं करता। ईसाई खुदा की जात के साथ रुहुल-कुदस^७ और हजरत ईसा को शरीक करते हैं लेकिन हिंदू इस किस्म की कोई बात नहीं करता। 'अहले-मुजस्सम'^८ खुदा के 'जिस्मानी-पैकर' के कायल हैं लेकिन बरहमन इसका मुनकिर है। 'सितारा-परस्त'^९ सात खुदाओं को यानी सव्यारो को मानते हैं लेकिन तौहीद का राग अलापनेवाला बरहमन इसका मुनकिर है। 'उन्सरी'^{१०} चार खुदाओं पर यकीन रखते हैं मसलन आब, आतिश, खाक व बाद को वो खुदा समझते हैं। लेकिन हिंदू एक खुदा का कायल है। और उसपर सावित क़दम है। एक कौम 'खुदा-ए-नूर' और खुदा-ए 'जुल्मत' की कायल है—जैसे 'आतिश-परस्त'^{११} जो 'आहूर-मज़दा और आहूर-हमन' 'की सन्वियत' के कायल हैं लेकिन बरहमन उन से गैर-मुतालिक है। एक कौम खुदा की 'तशबीही'^{१२-१३} और तमसीली^{१४} शक्ल की कायल है लेकिन बरहमन खुदा के

१. एकेश्वरवाद, २. अस्तित्व, ३. माननेवाले, ४. पालनहार,
५. भौतिकवादी, ६. द्वैतवादी, ७. पवित्र-आत्मा, ८. मूर्तिपूजक, ९. सितारों
की पूजा करनेवाले, १०. पंच-महाभूत के पुजारी, ११. अग्नि-पूजक, १२-१३.
उपमात्मक और रूपकात्यक, १४. पुरखाओं से

'तन्जियः' का कायल है। वह खुदा को बे-मिस्त्र और बे-चून व चरा तसव्वुर करता है और उसे 'निर्गुण' और 'निराकार' ख्याल करता है। और ये लोग जो पत्थर, चाँद-सूरज और मुख्तलिफ जानवरों वगैरह की परस्तिश करते हैं उसके मुतालिक बरहमन का यह कहना है कि वह खुदा नहीं बल्कि 'मखलूके-खुदा' हैं लेकिन गालिबन् वो देवी-देवता हैं या उनकी ख्याली सूरतें हैं। लिहाजा अगच्चि वो देवताओं के परस्तार हैं लेकिन खुदा की इवादत व इताअत में रियाकारी व दगावाजी नहीं करते। वो इन तमाम वातों के इसलिए 'मुअतकिद' हैं कि यह रस्मे आबा^१ व अजदाद^२ से जारी हैं लिहाजा वो उन रिवायात^३ की ताईद व तकलीद करते हैं और उन्हें तर्क^४ करना गवारा नहीं करते।

अलगरज मैंने जो हिंदोस्तान को और मुल्कों पर तरजीह दी है उसके दस सुवूत हैं:-

१. अव्वलश आँन शुद केह दरीन मुल्क दुरुन ।
इलम हमे : जास्त जे अंदाजे : फुजून ॥
लेक दिगर जाइ न दारंद खबर ।
जाँचेह केहू दर हिंद अलूमस्त व हुनर ॥

पहले यह कि इस मुल्क के अंदर हर जगह इलमो-हुनर के बे-अंदाजा खजाने हैं लेकिन वाहर के मुल्कों को इस का इलम नहीं है।

२. हस्त दुवुम आँन के जें हिंद आँदमियान ।
जुमले बिगोयंद जबानह ब-बयान ॥
लेकिन अज अकसाए-बिगर हीच कसी ।
गुफ्त नयारद सुखुने-हिंद बसी ।

दूसरे यह कि यहाँ के वाँशिदे^५ तमान जवानें-मुल्की या गैर-मुल्की बड़ी सफाई से बोलते हैं लेकिन गैर-मुल्क के लोग हमारी जबान अच्छी तरह नहीं बोल सकते हैं। मसलन तुर्क, मुगल, अहले-खुतन और अरब जब हमारी जबान बोलने की कोशिश करते हैं तो जैसे उनके होंठ सिल जाते हैं। इस के बर-अक्स हम उनकी जबानों पर इस तरह हावी होते हैं जैसे गडरिया गल्ले पर काबू रखता है और उसे सही राह पर चलाता है। इसका यह मतलब हुआ कि हम में इतनी तवानाई^६ है कि हम दूसरे मुल्कों पर हावी हो सकते हैं लेकिन दूसरों को हमारी जानिब निगाह उठाने को जुर्मत नहीं हो सकती। इस से यह भी जाहिर होता है कि हम कितने जहीन और होशियार हैं और दूसरे किस कदर कुन्द-जहन^७ और गबी हैं।

१. पुरखाओंसे, २. श्रद्धा रखनेवाले, ३. परम्परा, ४. छोड़ना, ५. रहनेवाले,
६. शक्ति या तंकित, ७. कमाहोशियार।

३. इन तरफ अज हर तरफी अहले-हुनर ॥
 दर तलबे-इल्मो-हुनर करदेह गुजर ।
 लेक ब-तहसीले-हिकम् बहरे-शरफ ॥
 बरहमन अज हिंद न शुद हीच तरफ ।

तीसरे यह कि कदीम ज़माने से बाहर के मुल्कों के लोग यहाँ इल्मों-फन और दानिशो-हिकमत सीखने की गरज से हिंदोस्तान आते रहे हैं । इसके बर-अक्स कोई बरहमन बाहर के मुल्कों में इल्मो-दानिश के हसूल की गरज से नहीं गया । खुद अबू मआशर जो नवीं सदी ईसवी का निहायत ही मशहूर 'माहिर-फलकियात'^१ और 'सितारा-शनास' हुआ है, अपने इल्म की प्यास बुझाने हिंदोस्तान आया था और दस साल यहाँ के कदीम शहरे बनारस में रहकर इल्मे-नुज्म में कमाल हासिल किया था । उसकी तमाम मालूमात हिंदोस्तान के बरहमनों की 'रहीने-मिन्नत'^२ थी ।

४. हुज्जते-चारुम रकमे हिंदसः बीन ।
 के अहले जहाँन वज़अ न दीदन्द चुनीन ॥
 हम ब-यकीं सिफर के नक्शीस्त तेही ।
 बीन चेह रुमूज़स्त च हज्जीश देही ॥

चौथी दलील 'इल्मे-हिंदसा'^३ या 'हिंदसे' के एदाद^४ व रकम है जिसकी मिसाल दुनिया में नहीं । सिर्फ 'सिफर'^५ ही को लीजिए । यह खाली 'नक्श है लेकिन इसमें कितने असरार पोशीदा हैं । 'इल्मे-रियाजी' और 'मुजस्सता' और 'अकलीदस' की शब्दों इसकी रहीने मिन्नत है । अगर 'हिंदसा' न होता तो इनका वजूद भी न होता । इस इल्म का 'इख्तेराअ' करनेवाला 'विला-शक व शुबा एक बरहमन था जिसका नाम 'असा' था । और चूंकि हिसाब का इल्म उसके नाम से मन्सूब हुआ और वह 'हिंद का था लिहाजा हिंद और असा' की तरकीब और तखफीफ से इस इल्म को हिंदसा कहने लगे । यह वह नादिर इल्म है जिसका मुहताज यूनान ही नहीं बल्कि दुनिया रही है । दुनिया भर के दानिशवरों^६ ने इससे मदद ली है । लिहाजा ये सब लोग बरहमन के शागिर्द हुए और वह किसी का शागिर्द नहीं ।

१. खगोलशास्त्र का पंडित, २. कृष्णी-एहसानमंद, ३. संख्याशास्त्र,
 ४. संख्या, ५. शून्य, ६. आविष्कृत करनेवाला, ७. ज्ञानी

५. हुज्जते पंजुम ब-बयान शरह कुनम ।
मुहूद्यान रा ब-खिरद जरह कुनम ॥
'दमनेह कलीलेह' जे ददो दामे सखुनः
वाँत के हम अज हिंद मिसालीस्त कोहन ॥

पाँचवीं दलील 'कलीलाः व दमना' यानी कार्तिका-दमनिका की 'मशहूरे ज़माना' तमसीली दास्तान है जो यहाँ कदीम जमान में हैवानात-चरिद व परिद-की जबान में लिखी गई है। इसमें सियासत^१, तहजीब,^२ शायस्तगी,^३ और अखलाक^४ के बह जवाहर पारे हैं कि वह दुनिया भर में मशहूर हो गई और फारसी, तुर्की, अरवी वगैरह दुनिया की मुहज्जिब 'ज़वानों में तर्जुमा की गई है। 'हकीमाना दास्तान'^५ हिंदोस्तान में लिखी गई और दुनिया भर के दानिशमंद इससे फैज हासिल कर रहे हैं।

६. हुज्जते-शश बाजिए-शतरंज शनव ।
रज केह अज सीनेह बरद रंज शनव ॥
हस्त हमज हिंद यकी बजए-गिरान ।
इन फने-तुर्फः केह दरू नीस्त कि रान ॥

छठा सुबूत 'शतरंज का खेल' है जो निहायत ही दिलचस्प है। यह भी हिंदोस्तान की 'गिराँ कद्र'^६ इस्तेराअ है और बड़ा अजीबो-गरीब फ़न है—बस एक 'बहरे-बेकराँ'^७ है! अगर दूसरे मुल्कों में इतने जहीन और दानिशवर लोग होते तो यह फ़न वहाँ ईजाद पाता। हर मुहरे की चाल के लिए बड़ी जहानत^८ और महारत दरकार होती है। इस फ़न पर दस्तरस हासिल करने की अच्छे-अच्छों ने कोशिशें कीं लेकिन आखिरकार हारकर बैठ गए और बिलाखिर हिंदोस्तान की अजमत व बुजुर्गी के कायल हो गए!

७. हुज्जते-हृष्ट आँस्त के : आँन हर सेह हुनर ।
हिंदसः व दमनः व शतरंज निगर ॥
खलके-जहान रास्त चू दस्तूर शुदेह ।
रौनके-हर-खानाए-मआमूर शुदेह ॥

१. राजनीति, २. सभ्यता, ३. शिष्टाचार, ४. नीति, ५. सभ्य तथा सुसंस्कृत, ६. ज्ञान-प्रधान या बोध-प्रधान, ७. अनमोल कीमती, ८. विशाल सागर, ९. चलुराई,

सातवीं दलील^१ यह कि यह तीनों उलूम यानी १. हिंदसः २. कलीला व दमनः
और ३. शतरंग^२ की-बीश हर मुल्क की तहजीबी जिदगी का जुज बन गए हैं।
~~गोयां दुनिया~~ का हर घर हिंदोस्तान का रहीने मिलत है।

८. हुज्जते-हश्त आँन केह सुरुदे-खुशे मा ।
कूस्त ब सोजे दिलो-जाँन अतिशे मा ॥
हर दमेह दानिस्तेह कह दर जुम्ले जहाँन ।
नीस्त बरींन गूनेह ब इन् नीस्त निहाँन ॥

आठवीं दलील हमारे मुल्क की 'मौसीकी'^३ है जो हमारे दिलो जान और
रुह में सोज भर देती है! सब जानते हैं, दुनिया भर में यहाँ की-सी मौसीकी नहीं
है। यह दुनिया में सबसे बेहतर और बरतर है। इसकी बजह यह है कि बाहरी
मुल्कों से यहाँ जो भी 'अहले-कमाल'^४ आए और अपने मुल्क के साज व नग्मा
के कमाल का मुजाहिरा किया तो उन्हें अपनी कोताहियों का पता चला जिन्हें
उन्होंने दूर किया लेकिन यहाँ बीसियों साल रहने के बाद भी उन्हें जुर्बत न हो
सकी कि एक-आध राग को सीधे तरीके से गा सकें!

९. हुज्जते नुह आँस्त केह अज नग्म-ए-तर ।
तीर खुरद आहु-ए-सहरा ब जिगर ॥
दोखतये जमजमः बी तीरो-कमाँन ।
जान देहदज जख्म-ए-आँन हम बेज्जमान ॥

नौवीं दलील यह है कि यहाँ का नग्मा न सिर्फ इन्सानों बल्कि हैवानों पर
भी जादू का असर करता है। मुगन्नी^५ का नग्मा तीर की तरह हिरन के दिल को
जखमी कर देता है। और वह आवाज की लै से मसहूर^६ होकर बे-इखितयार
मुगन्नी की तरफ खिचा चला आता है और उसके करीब आकर खड़ा हो जाता है।
मुगन्नी उसे हाँकना भी चाहे तो उस पर कुछ ऐसी बे-होशी तारी होती है कि वह
अपनी जगह से बिल्कुल नहीं हटता बल्कि बाज अवकात तो उसी आलम में तड़प-
कर जान दे देता है!

१०. हुज्जते-देह आँन के चू खुसरो-सुखन ।
सरागरी नीस्त तहे-चखें कुहन ॥
ऊ चू जे' हिंद अस्त ब सना गुस्तरै शैह ।
कुत्बे जहानशा बे-करम कद्रेह निर्गंह ॥

१. संगीत, २. हुनरमंद, ३. गायक, ४. मगन ।

दसवीं दलील यह है कि इस 'गुंबदे-नीलूफरी'^१ के नीचे खुसरो जैसा कोई भी 'खुश-कलाम'^२ और 'सहर-निगार'^३ शायर नहीं ! वह हिंदोस्तानी है और बादशाहे-वक्त का सना-ख्वाँ है और वह भी खुसरो के कमालात की दिल खोलकर दाद देता है और सोने-चाँदी से नवाज़ता है ।

हमने हिंदोस्तान के इलम व फनप र तबसरा किया । आइए, अब हिंदोस्तान की ज़बान और अदव का मुख्तसर जायजा लें । मैंने बहुत सारी ज़बानों से शनासाई^४ हासिल की है । बहुत-सी ज़बानें मैं जानता हूँ, बाज मैंने सीखी और बोली हैं और उनके बारे में कमो-बीश मालूमात हासिल की है ।

तीन ज़बानें ज़ियादा मकबूल हैं— अरबी, तुर्की और दरी (फारसी) । उनमें अरबी दुनिया में सबसे ज़ियादा मशहूर वे मारुफ है । वह कुरआन की ज़बान है और इल्मी ज़बान है । लेकिन वह बड़ी मुश्किल और वा-वाब्ता ज़बान है । उसका 'ग्रामर' है और एक आम इन्सान को सीखने के लिए खूने जिगर^५ करना पड़ता है ।

तुर्की ज़बान का भी 'ग्रामर' है । बाज इलाकों में हुक्काम की ज़बान यही है और आमिल, अफसर और सिपाही इस ज़बान में बात-चीत करना फर्खर व शान समझते हैं ।

फारसी बड़ी शीरीं ज़बान है । लेकिन इसका 'ग्रामर' मुरत्तब नहीं है । मैं अगर ग्रामर लिखूँ भी तो चूँकि सभी वह ज़बान जानते हैं लिहाजा उसको कोई कद्र नहीं होगी । इससे तो यही बेहतर है कि मैं शायरी कहूँ जिसको अवाम पसंद करते हैं और बादशाह भी उसका सिला देता है । अगर अवाम मेरी हौसला अफज्जाई न करते तो मेरी 'नै' (बाँसुरी) से इस किस्म की शराब न टपकती । लिहाजा खवास और अवाम की दिलचस्पी पर चीजों की ज़िदगी और मौत का दारोमदार होता है । लोग अगर लहसन को पसंद करें तो बेचनेवाले गली-कूचों में मिनेंगे और अगर जवाहरात से दिलचस्पी न लें तो उनकी कीमत दो जौ के बराबर नहीं होगी । वह चीज़ बाजार में नहीं लाई जाती जिसके खरीदार न हों ।

अलगरज ये तीनों ज़बानें जवाहरात की तरह गराँ कद्र और मकबूल हैं । वह अर्गाचि खास खास इलाकों में पैदा हुई हैं, लेकिन वह मशरिक व मगरिब में

१. नीला-आकाश, २. अच्छा कहनेवाला, ३. जादू जगानेवाला, ४. जानकारी, ५. दिल का खून ।

मकबूल हैं। उनकी मकबूलियत के तारीखी और तहजीबी असवाब हैं। आम तौर पर जिस जवान को वादशाह और खवास बोलते हैं वह अवाम में भी मकबूल हो जाती है। इन तीनों जवानों की तरबीज व तरक्की के यही असवाब हैं।

हिंदोस्तानी पर भी यही लिसानी कानून आयद होता है। यहाँ जमानए कदीम से 'हिंदवी' बोली जाती है। जब गौरी और तुर्की आए तो वह फारसी बोला करते थे। अब चूँकि उसका डक्टेदार हुआ, लिहाजा सब बड़े छोटे फारसी सीखने और बोलने लगे और दूसरी जवानें अपने अपने हृदूद से बाहर नहीं गई। चूँकि सारी जवानें खुदा की 'अकलीम कदा'^१ हैं लिहाजा किसी को बुरा नहीं कहना चाहिए। अब चूँकि कुरआन अरबी में नाजिल हुआ, लिहाजा फसाहत में वह 'नादिर-ए-रोजगार'^२ बन गई। दूसरी तमाम जवानों के बारे में भी हम कह सकते हैं कि हर जवान का अपना खास रग है। हर एक में मखमूस नमक है। एक जवान बुलंद बाँग दावे करती है कि मैं ही 'नमक की कान' हूँ तो दूसरी कहती है कि 'मैं तमाम जवानों से बेहतर हूँ और नाजों नजाकतवाली हूँ।' अलगरज हर जवान ब-जोमे खींश अपने ही खुम में गुम है, अपनी ही खुश फहमी में सरशार है और कोई भी यह कहकर तर्श रु नहीं होती कि मेरे खुम में शराब नहीं बल्कि सुरका है। अलगरज यह एक बेहूदा-सी बात होगी अगर मैं अरबी, फारसी और तुर्की ही के गुन गाता रहूँ और दूसरी जवानों को नजर-अंदाज करूँ। मेरे मुल्क में हर इलाके में एक खास जवान बोली जाती है जो वहीं की है और कहीं से उधार, नहीं ली गई। मसलन्, सिधी, लाहोरी, कश्मीरी, कबूली, धोर, समंदरी, तेलंगाणी और गुजर, बअरी, गोरी। इस तरह बंगाल, अवध और देहनी और उसके आसपास की जवानें ये तमाम हिंदोस्तानी या हिंदवी जवानें हैं जो अवाम अपने रोजमर्रा के कारोबार में इस्तेमाल करते हैं। लेकिन इन जवानों के अलावा एक और जवान है जो वरहमनों के नजदीक सबसे जियादा मुकद्दस व मोहतरम है। इसे वरहमन जानते हैं लेकिन सारे ही वरहमन उसपर दस्तरस नहीं रखते। अरबी की तरह वह भी बड़ी वा-जाब्ता और इल्मी व अदबी जबान है। उसमें चार ऐसी किताबें हैं जो बड़ी मुकद्दस हैं और जिन पर ये लोग अम्मल-पैरा हैं। ये चार वेद हैं—उनका ताल्लुक अदब व अख़लाक और इल्म व फन से है। तमाम किस्सों और कहानियों और किताबों की बुनियाद उनकी नजर में ये चार वेद हैं! और वेद से वय अदब व फन की तमाम तालीम हासिल करते हैं। जो भी इस जबान से वाकिफ है वह उसकी खूबियों की तारीफ करता है।

१. अता की हुई, २. संसार में अनमोल।

अगर मुझको उसपर कमा-हुक्का, महारत हासिल हो जाए तो मैं उस जबान में भी अपने शहनशाह की मदह में कसीदे लिखूँगा।

अपनी मसनवी ‘नूह-सिप्हर’ में इस तरह खुसरो ने अपने प्यारे वतन की बेहतरी और बरतरी के असबाब व्यान किए हैं। इससे साफ जाहिर होता है कि वह एक मुहिब्बे-वतन शायर था और अपने मुल्क की गंगा-जमनी तहजीब का सच्चा परस्तार था।

अमीर खुसरो की रूपानी मस्नवी : मजनूँ व लेला

डॉ. अमानत



तमाम 'असनाफे-सुखन' ^१ में मस्नवी सबसे
जियादा मुफीद, वसीअ और हमागीर सिन्फ है।
मस्नवी अस्ल में मजाहिरे-कुदरत की मुसविरी
है। मगर 'जज्बाते-इन्सानी,' ^२ 'मनाजिरे-
कुदरत,' ^३ फलसफा, तसव्वुफ, अखलाक और
'रिफअते-तख्युल' ^४ सभी का जल्वा एक ही
मस्नवी में ब-यक् वक्त नज़र आ जाता है।
मस्नवी अक्सर किसी तारीखी वाकिया या किस्से
की हामिल होती है, इसलिए ज़िदगी और
मुआशरत ^५ के जुमला पहलू इसमें समोये जा
सकते हैं। इसमें इश्को-मुहब्बत, रंजो-मसर्रत,
गैज़ो-गजब, कीना, नफरत, गरज हर किस्म के

१. काव्य-प्रकार, २. मानव मन के भाव,

३. प्रकृति चित्रण, ४. कल्पना की उड़ान,

५. समाज

‘जज्बाते-इन्सानी’ अदा करने की सलाहियत है। इस तरह मस्नवी में हर नौअ के दाखिली^१ और खारेजी^२ मजामीन की गुंजाइश है। इसकी वुसअत की खास वजह यह है कि मस्नवी का हर शेर इन्फेरादी हैंसियत रखता है। गजल और कसीदे के बर अक्स पूरी मस्नवी में आगाज ता अंजाम एक ही काफिए की पाबंदी जरूरी नहीं होती और न अशआर की तादाद महदूदो-मुअय्यन (सीमित-या ठहरी हुई) होती है। यही वह सिन्फे-शायरी है जिसमें शायर दिल खोलकर अपना कमाल दिखा सकता है। इसलिए हर जबान के बाकमाल-सुखनवरों^३ ने इसे नवाजा और अपने-अपने कमाले-फन की जल्वानुमाइयों^४ का आईना बनाया। ‘होमर’, ‘व्हर्जिल’, ‘मिल्टन’, ‘वाल्मीकि’, ‘व्यास’ और ‘फिरदौसी’ के नाम इस सिन्फ की बदौलत ‘जिदए-जावीद^५’ हो गए हैं।

मस्नवी आम तौर पर किसो-अखबार और हिकायातो-तारीख बयान करने के लिए मुरब्बज है। इसके सात वजन हैं।-

बहरे-हज्ज बहरे-रमल मुसद्दस से दो-दो और बहरे सरीअ, बहरे-खफीफ मुसद्दस और बहरे-मुतकारिव मुसम्मन से एक-एक वजन लिया गया है। तबील बहरों में मस्नवी नहीं लिखी जाती। बहरे-रमल मुसद्दस में मुताखिरीन^६ ने बहुत कम मस्नवियाँ लिखीं। मुल्ला जामी-ईरान के मशहूर शायर फर्मति हैं कि अमीर खुसरो पहले शायर हैं जिन्होंने इस बहर में मस्नवी लिखी।

फारसी शायर रूदकी ने गालबन् तमाम मआरूफ बहरों में ‘मस्नवी-निगारी’ की बिना डाली और मस्नवी की तमाम फन्नी-खुसूसियात^७ तौहीद, मुनाजात नात, मदहे-पादशाह, तारीफे-शोअरो-शायर और सबवे-तालीफ^८ वगैरह के मूजिद^९ निजामी गन्जबी हैं।

मजामीन के एतबार से ‘मस्नवी’ की जैल की किसमें करार दी जा सकती हैं।-

१. रजिमया^{१०} या तारीखी—जैसे ‘शाहनामा’, ‘सिकंदरनामा’

२. इश्किया^{११} —जैसे ‘शीरीं खुसरो’, ‘यूसुफ व जुलैखा’

६. आत्मगत, ७. विषयगत, ८. कवियों, ९. दर्शन-दिखाना, १०. अमर ११. आखरी दौर के या उत्तरकालीन, १२. कलात्मक विशेषताएँ, १३. ग्रंथ लिखने का करण, १४. प्रवर्तक, १५. महाकाव्य से संबंधित व ऐतिहासिक, १६. प्रणय-प्रधान

३. अख़लाकी^{१०} जैसे 'हदीकए-सिनाई', 'बूस्ताने-जामी'

४. किस्सा व अफसाना^{११}— जैसे 'हफ्त-पैकर' हश्त-वेहिश्त'

५. तसव्वुफ व फलसफा — जैसे 'मस्नवीए-मौलाना रूम', 'जामेजमे-औहदी'

'ख़म्सए-निजामी' के जावव में अमीर खुसरो ने पाँच इशिकया मस्नवियाँ^{१२}— 'मत्लउल-अन्वार', 'मजनूं व लैला', 'शीरीं-खुसरो', 'आईनए-सिकंदरी' और 'हश्त-वेहिश्त'— लिखी। इन पाँच मस्नवियों को 'पंज-गंज^{२०}' कहते हैं। ये निजामुद्दीन औलिया के नाम मन्सूब^{१३} करके अलाउद्दीन खिलजी की खिदमत में गुज़रानी गई हैं। इनमें सबसे जियादा शोहरत 'मत्लउल-अन्वार' को हासिल हुई। चुनाँचि कई शायरों ने इसके जवाब लिखे जिनमें मौलाना जामी की 'तोहफतुल-अबरार' खास तौर पर काबिले-ज़िक्र^{१२} है। लेकिन फ़न्नी के लिहाज से जो खूबियाँ 'मजनूं व लैला' में पाई जाती हैं वह और किसी मस्नवी में नहीं हैं। इश्क के असरारो रूमूज,^{१४} आशिको-माशूक के राजो-नियाज^{१५}, तास्सुरात^{१६}, और वारंदाते-क़ल्बी^{१७}, जिस हुस्न, सलासत, रंगीनी और सोजो-गुदाज^{१८} के साथ खुसरो ने इसमें नज़म किए हैं उसकी नज़ीर किसी पेशाख^{१९} के शाहकार^{२०} में मुश्किल ही से मिलेगी। हम जैल में अमीर खुसरो की इसी रूमानी मस्नवी— 'मजनूं व लैला' का मुख्तसर जायजा^{२१} पेश करते हैं।

'मजनूं' के फ़रजी^{११} होने के बारे में कई रिवायतें नक्ल की जाती हैं। इन सबका खुलासा यह है कि खानदाने-बनी उम्मिया का कोई शहजादा किसी परी-जमाल पर आशिक था। अपना राजे-इश्क छिपाने के लिए वह जो अशआर दीवानगी के आलम में कहता 'मजनूं' के नाम से कहता। लेकिन यह हकीकत है कि लैला और मजनूं वाकई इस दुनिया में थे। 'नज़द' इनका वतन था। यह अरब का वह हिस्सा है जो शाम से मिला हुआ और निहायत शादाब है। इसके हरे-भरे पहाड़ तरह-तरह के फूलों की खुशबू से महकते हैं। दोनों भी क़बीलए बनी

१७. नीति प्रधान, १८. अध्यात्म वाद व दर्शन संबंधित, १९. उर्दू-फारसी काव्य-प्रकार जिसमें प्रदीर्घ कथा या किसी युद्ध का वर्णन किया जाए। हिंदी में इसे 'काव्याख्यान' या 'आख्यानकाव्य' कहते हैं। २०. पाँच खजाने, २१. समर्पित, २२. उल्लेखनीय, २३. रहस्य-भेद, २४. प्यार की रहस्य-भरी बातें जो प्रेमी-एकान्त में करें, २५. प्रभाव, २६. मनोभाव, २७. तड़प-लगन-जलन, २८. पूर्वकालीन, २९. अप्रतिम कलाङ्कति, ३०. सर्वेक्षण, ३१. काल्पनिक,

आमिर के चश्मो-चराग़ ^{३२} थे । बचपन में दोनों अपने-अपने घर के मवेशी चराया करते थे । इसी आलम में जज्बए-इश्क ^{३३} ने सर उठाया । जब जरा बड़े हुए और चर्चा होने लगा तो लैला पर्दा-नशीन हो गई । उसके फिराक ने मजनूँ की वहशत पर ताजियाने का काम किया । इसके साथ दोनों की दास्ताने-मुहब्बत भी आम हो गई । बालिदैन ^{३४} ने अज़्-रहें-मुहब्बत लैला के घर शादी का पयाम दिया लेकिन लैला के बालिदैन ने बदनामी ओर रुसवाई के डर से इन्कार कर दिया । बकें-इन्कार ^{३५} ने मजनूँ के खिरमने-सब्रो-जब्त ^{३६} को फूँक डाला । वह कपड़े फाढ़कर जंगल को निकल गया । दश्त-नवरदी में इश्क के जौहर चमके । सोजे-इश्क ने इस आलमे-वशहत में उससे जो दर्द भरे अशआर कहलवाए हैं वह मुख्तलिफ़ जज्बाते-इश्को-मुहब्बत के आईनादार हैं । इस बादिया-पैमाई ^{३७} में सहरा के आहू मजनूँ के खास हमदमो-हमराज थे । बेटे की तबाही से बालिदैन का दिल कुढ़ता था । एक दंफा वह उसे हरमे-मोहतरम में ले आए और कहा कि 'खानए-कावा' का गिलाफ ^{३८} थामकर इश्के-लैला से नजात ^{३९} की दुआ माँगो । मजनू़ ने गिलाफ पकड़कर कहा :

"अय मेरे रब ! लैला की मुहब्बत मेरे दिल से कभी न निकालना । खुदा की रहमत हो उस बंदे पर जो मेरी इस दुआ पर आमीन कहे" । (अरबी शेर का तर्जुमा ।)

सितम बालाए-सितम ^{४०} यह हुआ कि लैला के संगदिल ^{४१} माँ-बाप ने उसकी शादी किसी और जगह कर दी । उस वक्त मजनू़ पर जो कोहे-बला ^{४२} टूटा होगा वह मोहताजे-बयान ^{४३} नहीं । लैला की बेचैनी व बेकरारी ने उसके शौहर पर ज़िदगी बबा-ले-जान कर दी । उसने तंग आकर उससे कते-तअल्लुक कर लिया । मजनू़ कभी कभार जोशे-जुनू़ ^{४४} में दयारे-मेहबूब में निकल आता और अपने दर्द भरे अशआर से लैला और उसके अहले-कबीला ^{४५} को तड़पा जाता । आखिरकार लैला ने उसी हसरतो-यास में जान दे दी । लैला की मौत की अलमनाक ^{४६} खबर सुनकर मजनू़ भी कब ज़िंदा रह सकता था ? वह भी नामुराद मर गया । यह है अरबी 'दास्ताने-लैला-मजनू़' का मुख्तसर खुलासा !

३२. पुत्ररत्न, ३३. प्रेमभाव ३४. माँ-बाप, ३५. इनकार की विजली, ३६. संयम का खलिहान, ३७. जंगल में फिरना, ३८. पर्दा, ३९. छुटकारा, ४०. और तो और जुल्म पर यह जुल्म हुआ कि, ४१. कठोर, ४२. मुसीबत का पहाड़, ४३. क्षणंन जरूरी नहीं, ४४. पागलपन का जोश, ४५. कबीलेवाले, ४६. दर्द भरी ।

अमीर खुसरौ ने अपनी मस्नवी में 'फन्नी-लवाजिम'^{४०}, 'हम्द, मुनाजात और नात' वगैरह के अलावा कई दिलचस्प उन्वानात कायम किए हैं। इनके किस्से का मुख्तसर खाका दर्जे-जैल है।

"लैला-व-मजनूँ की मकतब-नशीनी, "दर्से-इश्क"^{४१} की तकरार अफ़शाए-राज, ^{४०} माँ की लैला को नसीहत, पर्दा-नशीनी, मजनूँ की वहशत "^{४२} बाप का मजनूँ को समझाकर जंगल से लाना, लैला के यहाँ शादी का पयाम, उसके वालिदैन का इन्कार, क़बीले के सरदार 'नौफ़िल' का लैला के खानदान से लड़ना, इसी मआरेके ^{४३} में मजनूँ की जानिव से कव्वों की जियाफ़त, ^{४४} मजनूँ की वहशत में इजाफ़ा, नौफ़िल की लड़की से मजनूँ का निकाह, लैला के निकाह की खबर सुनकर मजनूँ को खत लिखना, मजनूँ का जवाब देना, दोस्तों का जुल देकर मजनूँ को बाग में ले आना मगर उसका दीवानगी में भाग खड़ा होना, मजनूँ का बुलबुल से मुकालमा, ^{४५} सगे-लैला से मुलाकात, लैला का खबाब में नाके पर सवार होकर मजनूँ के पास पहुँचना, लैला का सहेलियों के साथ बाग में जाना, मजनूँ के एक दोस्त का लैला को पहचानकर पुरसोज़ आवाज़ में 'मजनूँ की गज़ल' गाना, लैला का बेकरार होकर घर लौटना और मौत के मरज में मुब्तेला होना, लैला की बीमारी की खबर सुनकर मजनूँ का अयादत ^{४६} को आना और उसका जनाजा देखना, मजनूँ का मस्ताना तराना सर करना और लैला के दफन के वक्त दम तोड़ देना और साथ ही दफन ^{४७} होना "।

मजनूँ व लैला के किस्से के ऊपर दिए हुए खाके ^{४८} में न बज़म-^{४९}आराई है और न कसो-ऐवान ^{५०} की आरास्तगी, सोजे-इश्क और हिज्रो-फिराक ^{५०} का दिल-गुदाज अफसाना है और सहरानवर्दी ^{५१} की दास्तान। इसके लिए कुदरत की तरफ से खुसरौ को एक दिले पुरदर्द बदीअत ^{५२} हुआ था। हजरते निजामुद्दीन औलिया दुआ में उनके सोजे-सीना का वास्ता देते थे और उन ही चिश्ती निस्वत जोशो-खरोश ^{५३} की खुद जामिन ^{५४} थी। किस्से मजनूँ की जान 'तग़ज़ज़ुल' ^{५५} है। फिर वाकिया-निगारी तो अमीर खुसरौ का हिस्सा थी। मस्नवी के हर किस्से पर

४७. कला की ज़रूरी बातें, ४८. मद्रसे में दाखिल होना या बैठना, ४९. प्रेम-पाठ, ५०. भेद का खुलना, ५१. पागलपन, ५२. लड़ाई, ५३. दावत-मेज़बानी, ५४. संवाद-बातचीत, ५५. बीमार पुरसी या पुरसा, ५६. गाड़ा जाना, ५७. रूपरेखा, ५८. महफ़िल सजाना, ५९. महल को सजाना, ६०. विरह, ६१. जंगल में फिरना, ६२. खुदा की तरफ से मिला, ६३. उत्साह, ६४. जिम्मेदार, ६५. गज़ल की खूबियाँ लिए हुए

हमें 'वाक्ये' का धोखा होता है। खुसरौ 'मुसव्विरे-फितरत'^{६६} हैं। उनके कलम ने जो लफजी तस्वीरें खींची हैं वो सरापा 'मानी'^{६७} व 'बहजाद'^{६८} का 'मुरक्का'^{६९} हैं।

निजामी की मस्नवी का नाम 'लैला-मजनूँ' है अमीर खुसरो ने अपनी मस्नवी का नाम उलटकर 'मजनूँ-लैला' रखा :

नामश के जे गैब शुद मुसज्जल ।
 'मजनूँ व लैला' द-अवसे अव्वल ॥
 तारीख जे हिजरते आँ के बगुज़त ॥
 सालश नवदस्त व शशा सद व हश्त !!

(९०) (६००) (८) = ६९८ हि. स.

बीश व-शुमारे-रास्ती हस्त ।
 जुम्ला दू हजार व शशा सद व शस्त ॥

इसमें कुल २६६० अशआर हैं। लेकिन छपे हुए नुस्खों में आम तौर पर २६०८ अशआर मिलते हैं।

'मजनूँ व लैला' की जवान पाकीजा व पुरसोज है जो इश्किया मस्नवी के लिए निहायत मौजूँ और ज़रूरी है।

किलकम सरश जबाने-गैबस्त ॥
 गंजीना-कुशाए-काने-गैबस्त ॥
 आवाज देहम चु दर रवानी ॥
 लबैक जनाँ दवद मआनी ॥
 अज्ज जुंबिशे नज्मे गर्म-रफ्तार ।
 दल्लालए-फ़िक्र मान्दे : बेकार ॥

"मेरी कलम की नोक जबाने-गैब^{७०} है, बल्कि गैब की कान का खजाना खोलती है। मैं जब खानी में आवाज देता हूँ तो मधानी लबैरु^{७१} कहते हुए दौड़े चले आते हैं। मेरी नज्मे-गर्म रफ्तार^{७२} की जुविश से फ़िक्र की दल्लाला बेकार होकर रह गई।"

६६. नियति का चित्रकार, ६७. रुम का मशहूर चित्रकार, ६८. पुराने जमाने का एक चित्रकार, ६९. अल्बम, ७०. देवदाणी, ७१. हामी भरना, पुकार का जवाब, ७२. तेज्ज-तेज्ज चलनेवाली काव्यधारा

लेकिन बाज अल्फाज खुसरो ने ऐसे भी इस्तेमाल किए हैं जो अब मतरुक^{७३} हैं ।

किरदार-निगारी (चरित्र-चित्रण)

मजनूं मकतव में जाता है—

सालश ब-शुभारे पंजुम उफताद ।
जू नूर ब-चर्खो—अंजुम उफताद ॥
शुद ताज़े : चूं नीम रुस्ते: सखी ।
या बाल दमीदे : नव तिदर्वी ॥
दानाए—रक्म जे बहरे-तालीम ।
करदश ब-किनार तख्ते तस्लीम ॥

“ पाँच साल की उम्र में मजनूं को पढ़ने के लिए मकतव में पिठा दिया जाता है । उसकी बगल में एक तख्ती दे दी गई है । इस वक्त उसके सिन^{७४} का यह आलम है कि वह नवखेज^{७५} ‘ सर्व ’ नजर आता है या एसे ‘ तिदर्व^{७६} ’ की मानिद हैं जिसके अभी—अभी पर फूटे हैं ।

नालिदेह ब-तख्तेह दर दबिस्ताँ ।
चूं बुलबुले-मस्त दर गुलिस्ताँ ॥

“ जानू^{७७} पर तख्ती धरे हुए वह कुछ इस तरह लहक-लहककर अपना सबक याद करता था जैसे कोई मस्तो-बेखुद^{७८} बुलबुल गुलिस्ताँ में चहक रहा हो ! ”

‘ लैला ’ की पर्दा-नशीनी के बाद मजनूं का यह हाल है कि—

दुजादीदेह सरश के-दीदेह मी रीखत ।
वज दीदेह दुरे नचीदेह मी रीखत ॥
जीं गून : ब-चारई के दानिस्त ।
मी कर्द शकीब ता तवानिस्त ! !
चूं सैले-गमशा रसोद बर फर्क ।
अज पदेह बेरून फुताद चूं बर्क ॥
बीरूं शुदो कर्द पैरहन चाक ।
बफगन्द ब-तारुक अज जमाँ खाक ।

७३. टंकसाल-बाहर, अप्रचलित, ७४. उम्र, ७५. जवान, ७६. एक परिदे का नाम

७७. घुटना, ७८. मगन,

अ. खु....३ ...

“ लैला के पर्दा-नशीन हो जाने पर निगाहे-आम ^{७९} से छुप-छुपाकर अपनी आँखों से आँसुओं के अनमोल मोती लुटाता था । वह मकदूर भर सब्रो-शकेब से काम लेता था । लेकिन जब सैले-गम सर से ऊँचा हो गया तो वह बिजली की मार्निंद घर से बाहर निकल आया, अपना पैरहन ^{८०} चाक-चाक कर डाला और सर पर खाक उड़ाता हुआ सहरा ^{८१} की जानिव चल दिया ।

लैला के हुस्नो-जमाल ^{८२} की झलक देखिए :

बूद अज्ञ सफे-आँ बुताने चूँ माह ।
माही के जदाफताब रा राह ॥
लैली नामी के मैँइ गुलामश ।
खालशा नुकती जे नवशे-नामश ॥
मिशअल-कुशे आफतावो-अंजुम ।
दीवाना कुने परी व मर्दुम ॥
सर-ता-ब-कदम करिशमा व नाज ।
हम सरकशे-हुस्नो हम सरअंदाज ! !
नाजी व हजार फितनेह दर दह ।
चश्मी व हजार कुश्तेह दर शह ॥

“ वह एक चाँद-से मुखडेवाली हसीन दोशीज्ञा ^{८३} थी जिसके सामने सूरज की भी आबो-ताब ^{८४} माँद थी, उसे लैला कहते थे चाँद भी उसका हल्का-बगोश ^{८५} गुलाम था । उसका तिल तो उसके नाम का महज ^{८६} एक नुकता था । मेहरो-अंजुम ^{८७} की मिशअल ^{८८} उसके सामने बे-रौनक थी और क्या इन्सान, क्या परियाँ, सभी उसके जमाले-दिल ^{८९} अफरोज के मतवाले थे । वह सर-ता-बक्कदम करिशमा ^{९०} व नाज थी-सरापा नाज ^{९१} भी, नियाज ^{९२} भी । उसकी इश्वा तराजियों^{९३} ने दुनिया में हजारों फितने ^{९४} जगाए थे और उसकी शोख-कटेली ^{९५} अँखडियों ने शहर भर में हजारों आशिकों को धायल कर रखा था ।

मायूसी के आलम में मजनूँ के निकाह की खबर लैला के नाजुक दिल पर ज़ख्मे-कारी लगाकर उसे पारा-पारा कर देती है और उसकी ‘निसाईगैरत’ ^{९६} को ठेस लगाकर और ज़ियादा जानकाह बना देती है :

७९. लोगों की नजर से, ८०. कुर्ता, ८१. जंगल, ८२. खूबसूरती, सौंदर्य, ८३. कुँआरी, ८४. चमक-दमक, ८५. कान में बाला डाले हुए, ८६. सिर्फ, ८७. सूरज और तारे ८८. मशअल, ८९. दिल को रौशन करनेवाली सुंदरता, ९०. चमत्कार, ९१. फख्ता, घमंड, ९२. विनय, ९३. नाज-नखरे करना, ९४. ज़गड़े पैदा करना, ९५. छंचल ९६. स्त्री, ‘सुलभ स्वाभिमान,

कबकी के : शिकस्तेह् बाल बाशद ।
शाहीं जनदश चेहाल बाशद ।

“ भोले-भाले चकोर के वाजू टूट चुके हैं । ऐसी हालत में शाहीन ^{९७} उसपर टूट पड़ता है और जख्म लगाता है । ”

मजनूँ के निकाह की खबर सुनकर ‘ शिकस्ता-खातिर ^{९८} ’ लैला की जान पर भी बन गई जिसे शायर ने ‘ शिकस्ता-बाल ^{९९} ’ चकोर की उस हालत से तशबीह ^{१००} दी है जो बेखबरी में शाहीन के उस पर टूट पड़ने से तारी होती है ।

लैला के बहारे-आलमी बूद ।
अज्ज चश्मए ज़िदगी नमी बूद ॥
आतिश-जदेह गश्त नव-बहारश ।
वज्ज आब बे-रफतेह चश्मा-सारश ॥
शुद तीरह जमाले-सुबह-ताबश ॥
वुक्तादेह ब-जर्दीं आफताबश ॥
हम रंजे तनो हमअँदोहे-यार
यक जाँ ब-दू गम शुदेह गिरपतार ॥

“ लैला जो सरोपा ‘ बहारे-अलम ^{१०१} ’ थी अब ‘ चश्मए-ज़िदगी ^{१०२} ’ की नम होकर रह गई थी, उसकी जवानी को इश्क की आग ने फूँक डाला वह एक ऐसे झरने की मानिद थी जिसका पानी सूख चुका हो । उसका सुबह को रौशन करनेवाला हुस्न सँवला गया, उसके सूरज-से चेहरे पर जर्दीं ^{१०३} छा गई । उससे रंजे तन भी था और गमे यार भी । उसकी एक नाजुक जान दो गमों में मुब्तेला ^{१०४} थी ।

मन्जर निगारी (प्रकृति-चित्रण) : चाँदनी रात

चूँ जुल्फे-शब अज्ज कलालए-तर ।
दर दामने-खाक रीखत अंबर ॥
अज्ज पर्देह अरुसे-मह बेरुँ जस्त ।
खवाब आमदो चश्मे-मरदुमाँ बस्त ॥

९७. शिकरा, ९८. टूटे दिलवाली, ९९. जिसके वाजू टूटे हो, १००. उपमा, १०१. दुनिया की बहार, १०२. जीवन रूपी झरने की चद बूँदें, १०३. पीलापन, १०४. फँसी हुई

“ जब रात ने अपने भीगे बालों को झटककर जमीन के दामन पर अंबर वरसाया तो चाँद की दुल्हन पद्म से निकल पड़ी और नींद ने आकर लोगों की आँखें मेंच लीं । ”

लैला ‘ आलमे-ख्याल ’^१ में, तनहाई की शव, मजनूँ से हमकलाम^२ है

शबहा के मह अज उफक बर आयद ।
महताब ज्ञे रुज्जनम दर आयद ॥
चश्म व सितारेह राज गूयद ॥
जानम् गमे-रपतेह बाज गूयद ॥
यादे तू जे मन बरद चुनाँ हूश ।
कज हस्तिए-खुद कुनम फरामूश ॥

“ तनहाई की रातों में जब उफुक^३ से चाँद वर आमद होता है और उसकी दिल आवेज^४ व खुनुक^५ किरने रुज्जन^६ में से छन-छनकर मेरे कमरे में दाखिल होती हैं तो मेरी आँखें सितारों से अपना राजे दिल बयान करती हैं और मेरी जान अपने गमे-रफता को दोहराती हैं ।

बहार का नवशा—

चूँ नाफेह कुशाद बादे-नौ-रुज ।
बिशगुपतब हारे-आलम-अफरुज ॥
अज शबनमे-गौहरीं-शमाइल ।
आरास्त गुलूए-गुल हमाइल ॥
नाजुक तने लालए-दिल दिल-अफरुज ।
लर्जिदेह शुदज नसीमे-नौरुज ॥
बा शाहिदो-मैं खुजस्तः तावाँ ।
गश्तंद ब-हर चमन खिरामाँ ॥

“ जब ‘ बादे नौ^७ रौज’ चलने लगी तो बहारे-आलम अफरोज खिल उठी, फूलों की हसीन गर्दन में शबनमी मोतियों से गूँथा हुआ हार पहनाया गया । दिल अफरोज लाले का नाजुक बदन नसीमे नौ-रौज से थिरकने लेगा और खुश-नसीब अफराद “ शाहिदो मैं ” की हमराही में बागों में खिरामे^८ नाज करने लगे । ”

१. ख्याल या कल्पना की दुनिया में, २. बातें करती है, ३. क्षिष्टिज,
४. दिल लुभानेवाली, ५. ठंडी, ६. पूराख-चीरे, ७. नौरोज की हवा, ८. लोग,
९. प्रियतमा वृ. मदिरा, १०. इठलाकर चलने लगे ।

खिजा का आलम

आमद चु खिजाँ ब-गारते-बाग ।
 बिनशस्त बजाए-बुलबुलां जाग ॥
 पुर बर्ग शुदेह जमीने-गुलजार ।
 चूँ मजलिसे-मुकरिमाँ जे दीनार ।
 ज-आसीबे-तपाँचहाए सरसर ।
 गल्ताँ ब-जमीं शिगूफए तर ॥
 बर्गी के जे बाद शुद गुरीजाँ ।
 हर गूशा: दवाँ फुताँ व खीजाँ ॥
 हर सूई बरैहनः गुलसितानी ।
 चूँ राह फुतादेह कारवानी ॥

“ जब बाग की गारतगरी के लिए खिजाँ आई तो कौओं ने बुलबुलों की जगह ली । ”

मिन्कारे-कुलाग बर सरे गुल ।
 मिक्राज शदेह व शरै-बुलबुल ॥

“ गुलाब की डाली पर बैठे हुए कौए की चोंच, जिसमें बुलबुल का पर है, फूल के हक में कंची बन गई है । ”

बाग की सरजमीन मुझाए हुए सूखे पत्तों से इस तरह पट गई जैसे सख्ती अमीरों की महफिल में दीनारों का अंवार ! आँधी के तमाँचों ^१ से शादाब-शिगूफे ^२ जमीन पर लुढ़कने लगे और पत्ते उसके डर-खौफ से सर छुपाने के लिए बेतहाशा इधर-उधर गिरते-पड़ते भागने लगे ! गरज खिजाँ के हाथों तबाहशुदा ^३ बाग की हालत उस कारवाँ की तरह थी जिसे रहजनोंने ^४ अभी-अभी लूटा हो ।

वाकेआ निगारी (कथा-कथन) :- अफसाना निगारी का कमाल यह है कि फर्जी किस्सा भी इस अंदाज से व्यान किया जाए कि उसपर हकीकत का धोखा हो इसके लिए शायर का इन्सानी फितरत और वाकेआत का नब्ज शनास ^५ होना जरूरी है । लैला की माँ जैसे ही लैला की इश्कवाजी का हाल सुनती है तो बदनामी के तसव्वुर ही से जिगर थाम लेती है और शिद्दते ^६ गम से

१. थण्ड, २. हरी-भरी कलियाँ, ३. उजड़ा हुआ, वीरान, ४. लुटेरे, वटमार,
 ५. नाड़ी पहचान ताला, ६. दुख का जियादा होना

घर के एक गोशे में जा बैठती है। वह विलाखिर संभलती और लैला को तन्हाई में समझाती है कि वह अपने दिल से मजनूँ का ख्याल निकाल दे। औरतों के ख्याल में मर्द बेवफा होते हैं इसकी झलक लैला की माँ की इस नसीहत में मौजूद है।

मजनूँ की माँ भी बेटे की मुहब्बत का हाल सुनकर उससे कहती है कि बेटा, मुझे सद्मए^१ जाँकाह में मुव्वतेला न करो। सब्र से काम लो। मगर आखिरकार वह भी बेटे के हुसूले^२ मुद्दआ में हर मुमकिन कोशिश का वादा करती है। मजनूँ का बाप भी यही नसीहत करता है। लेकिन उसका लबो-लहजा हौसला^३ अफजा है। वह कहता है, “ औलाद बुढ़ापे का सहारा होती है, मगर बेटा ! तुम खुद सहारे के मोहताज हो, सब्रो हिम्मत से काम लो। तुम्हारे मक्सद की कामयाबी के लिए हम हर मुमकिन कोशिश करेंगे । ”

जो गम हमेह गर मुराद, यार अस्त ।
गम हीच मखुर के दर किनार अस्त ॥
गर बर महे-आसमाँ नेहो हूश ।
कोशम् के रसानमत दर आगूश ॥

तुम्हारे इस रंजो-गम की वजह अगर यह है कि तुम्हें अपना मेहबूब हासिल हो जाए तो मुतलक^४ पर्वाह न करो, यूँ समझ लो गोया वह तुम्हारे आगोश ही में है। अगर तुम असमान का चाँद भी माँगो तो मैं कोशिश करूँगा कि उसे तुम्हारे आगोश^५ में ला डालूँ । ”

सेहरे-हलाल (वर्णनशैली):- मुसविरे फितरत शायर हर चीज के अच्छे-बुरे पहेलुओं का ब-गौर मुशाहेदा^६ करता है और अपनी जादू-बयानी से मुहब्बत या नफ्रत के जज्बे को उभारता है। अमीर खुसरो ने एक मौके पर ‘ सगे-लैला ’^७ के जिक्र में ऐसी ही जादू-बयानी का मुजाहरा किया है।

“ मजनूँ भटकता हुआ कूचण-जानाँ में जा निकलता है। वहाँ उसे एक खारिश-जदा^८ कुत्ता नजर आता है जिसका सारा जिस्म खारिश से धायल है, पहलू में जख्म पड़ गए हैं, जख्मों से खून रिस रहा है, सर खाक में छुपाए हुए हैं, मुँह खुला रह गया है, कमर झुक गई है, फाक्काकशी^९ से पेट कमर से आ लगा है, सर से पाँव तक

१. जान घटाने-वाला सद्मा, २. मतलब हासिल करना, ३. ढाढ़स बंधानेवाला,
४. जरा भी, बिल्कुल, ५. गोद, ६. निरीक्षण, ७. लैला का कुत्ता,
८. जिसके बदन पर खुजली हो, ९. भूख के मारे,

ज़ख्मों से निढ़ाल है और खून-आलूदा ज़ख्मों को अपनी ज़वान से चाट रहा है । ” इस किराहत अंगेज मख्लूक को मजनूँ ज्यों ही देखता है, लपककर प्यार से गोद में उठा लेता है, उसके हाले-जार पर वे-साढ़ता ? उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगते हैं । मजनूँ कुत्ते की जगह जाड़ता है, ढेले और कूड़ा कर्कर परे फेंकता है और उसके बदन से गर्दों ? गुवार साफ करता है ।

यह कोई मजनूनाना^१ हरकत नहीं, हक-शनासी^२ और हक-पसंदी का जज्वा है । ‘सगे-लैला’ की इस दिलचस्प और मशहूर रिवायत^३ को शोअरा हज़रात ने तरह-तरह से रंगा है लेकिन अमीर खुसरो का अन्दाजे^४-व्यान निहायत ही मोअस्सिर और निराला है । मजनूँ कुत्ते से यूँ खिताब^५ करता है ।

हस्तीम मनो-तू हर दू शब-गर्द ।
लेकिन तू ब-नालई व मन अज् दर्द ॥
ख्वाहद चु तुरा दरूने देहलीज् ।
यादश देही अज् सगे दिगर नीज् ॥
ज़ंजीरे-खुदस चु नेहद बर दूश ।
अज गर्देने-मन मकुन फरामूश ॥

“ ऐ कुत्ते ! हम रात को आवारागर्दी करते रहते हैं । तू चीखता फिरता है और मैं गमे-इश्क को सीने में छुपाए आहो-जारी करते हुए रास्तों की खाक छानता हूँ । जब मेरी महबूबा तुझे देवढ़ी में बुलाए तो उसे एक और कुत्ते की याद दिला देना और जब वह तेरी गर्दन में तौक^६ डाले तो मेरी गर्दन को भूल न जाना । ”

किसी ने मजनूँ की इस ‘सग-नवाज़ी^७ पर एतराज किया तो वह झट बोल उठा —

“ अगर मैं इस कुत्ते के पाँव भी चूमूँ तो बेजा न होगा, अर्गचि यह शहर के गली-कूचों में फिरता-रहता है । लेकिन यह भी तो हकीकत है कि मेरी मेहबूबा के आस्ताने^८ पर से इसका बार-बार गुज़र हुआ है । और तो और एक दिन मैंने अपनी आँखों से इसे उस ‘परीवण^९’ के कूचे से गुज़रते हुए देखा था । मुझे यह कुत्ता इसलिए अजीज है कि यह मेरे ‘दोस्त’ का ‘दोस्त’ है । और इसे मेरे

१. सहज, २. धूल, ३. पागलों जैसी, ४. सच की पहचान, ५. रुदियाँ, परम्परा, ६. वर्णनशैली, ७. कहता है, ८. हार, ९. कुत्ते पर मेहरबान होना, १०. चौखट पर, ११. परी जैसी सुंदरी

मेहबूब का कुर्ब^१ हासिल है। मैंने अपने मेहबूब की दिलजोई^२ की खातिर इसे भी अपना दोस्त बना लिया है। ” गालिब ने इसी बात को यूँ अदा किया है—“ गालिब नदीमे-दोस्त से आती है वूए दोस्त । ”

गर मन न पाए-सग ज़नम् बूस ।
जाँ पाई बुवद न जीं ल-ब अफ़्सूस ॥
ईं पा के: ब-शहरो-कूई गश्तेह अस्त ।
पीशे-दरे-यारे-मन गुज़श्तेह अस्त ॥
रुज्जीश ब-कूए-आँ परी-कीश ।
दीदम गुज़राँ ब-दीदए-खीश ॥
ताज़ीमे वयम न-अज़ पये ऊस्त ॥
कश दूस्त गिरपतम अज़ पये दूस्त ॥

इसी तरह मजनूँ के नाम लैला का खत, मजनूँ का नालए^३ मस्ताना, और आशिक के वीराने से लौटने के बाद लैला की आहो-जारी वगैरह ‘सोजो-गुदाज’ की बेहतरीन मिसालें हैं।

फलसफए-अखलाक : (बोधपरक उकितयाँ)

‘मजनूँ लैला’ अगचि एक मन्जूम रुमानी दास्तान है मगर अमीर खुसरो ‘नुकता-सन्ज’^४ ‘तबीयत’ ने उसमें जा वजा ऐसी हकीकतें समो दी हैं जो एक कामियाब जिंदगी के लिए मुफीद और मिअशले-राह बन सकती है :—

लेकिन न बुवद हयाते-जावीद ॥
ता सर न कशी ब-माहो-खुशीद ॥

“ इन्सान का कमाल हिम्मतो-इल्म पर मुनहसर हैं। उस सर-अफ़राजी^५ हासिल करनी चाहिए। अगर वह मेहरो-माह पर कमंद^६ न डाले तो वह अमर नहीं हो सकता। ”

हर सुखं गुली के दर बहारीस्त ।
दर दामने ऊ निहफ्तेह खारीस्त ॥

१. नजदीकी, २. दिल रखने की खातिर, ३. मस्तों के जैसा रोना, झींकना, ४. बारीक बातें समझनेवाली तबीअत, ५. बड़ापन, इज्जत, ६. फदे में फाँसना ।

“ हर उस गुलाब के दामन में, जिसपर वहार हो, काँटा छुपा रहता है । ”

सूफी के रवद ब-मजलिसे मै ।
अलबत्तेह चकद पियाला वर वै ॥

‘मैखाने’ में जानेवाले सूफी को शी दुनिया शराबी ही समझती है । ”

हर यक न-हसी के सीरवद तीज़ ।
पैकीस्त सूए-अजल सबुक-खीज ॥

‘हर तेज़ चलनेवाली साँझ गोया एक कासिदे है जो मौत की जानिब तेजी के साथ बढ़ता चला जा रहा है । ! । ”

यारी के न आयद दर आगूश ।
आँ बेह के कुनी जे दिल फरामूश ॥

“ जो यार तेरे आगोण में न आए तू भी उसे दिल से भुला दे । ”

आब अज़ पसे मर्गे-तिश्न : जुस्तन ।
हम कार आयद बली ब-शुस्तन ॥

प्यासे शख्स के मरने के बाद पानी की तलाश फिजूल है । यह पानी काम तो जरूर आ सकता है लेकिन सिर्फ ‘गुस्ले-मव्यत’^१ के लिए । ”

यक सफहा पुर अज़ खुलासए-शौक ।
बेहतर जे दू सद किताबे बे-जौक ॥

एक ऐसा सफह^२ जिसमें मुहब्बत की पुर लुत्फ दास्तान बयान की गई है, दो सौ खुशक^३ व बेमज्जा किताबों से बेहतर होता है ।

दीवानः के सी गुरीज़द अज़ संग ।
दारद ब-यकीं निशाने-फरहंग ॥

“ पत्थरों की मार के डर से घबराकर दीवाने का भागना उसके सियाने-पन का सबूत है । ”

१. शराबखाना. २. मुर्दे को जहलाना, ३. पन्ना, ४. रुखी-फीकी,

तश्वीहात व इस्तेआरात : (उपमा और अन्य अलंकार)

खुसरो ने मजनूँ और लैला में बेशुमार^१ नादिर^२ और अछूती तश्वीहात^३ दूस्तेमाल की हैं :-

शुद जल्वा-नुमा बुते-हिसारी ।
चूँ गुल ब-नसीमे बहारी ॥
नाजुक बदनी चु दुर्रे-मकनूँ ।
मजनूँ कुने सद हजार मजनूँ ॥

“ वह बुत पद्दे से निकलकर यूँ अपना जल्वा दिखाने लगा जैसे नसीमे-बहारी के चलनेपर फूल । वह नाजनीन एक ऐसा ‘ दुर्रे-मकनूँ ’^४ थी जो अपनी मुहब्बत में हजारों आशिकों को पागल बना दे ! ”

मजनूँ अपनी नाकदरी का शिकवा करते हुए कहता है कि वह उस शाही घोड़े की तरह जलीलो-ख्वार^५ है जो अंधा हो जाने पर किसी मसरफ^६ का नहीं रहता ।

बे-क्रीमतो-कदरो-ख्वारो-काहाँ ।
चूँ मरकबे-कूरे बादशाहाँ !!

“ तेरे सिवा जो यार इस वक्त मेरे पहलू में है इसमें शक नहीं कि ‘ सर्व ’^७ की मानिद है लेकिन मेरे लिए वह बबूल का दरख्त है । ”

आँ यार के जुज् तू दर किनार अस्त ॥
सर्वस्तों मरा दरख्ते-खारस्त !!

लैला की सहेलियाँ मुर्दा हालत में लैला को बाग से घर लाती हैं । ममता की मारी माँ बेटी की लाश पर इस तरह गिर पड़ती है जैसे पानी की सतह^८ पर तिनका या आग में कबाब !

उफ्ताद बरु चु ख़स बर आबी
या बर सरे-आतिशी कबाबी !!

मजनूँ नालए जार सर करते हुए कहता है :

चूँ गुल ब-ख़न्देह कूशीम ।
हरचंद लिबासे जिदा पूशीम !!

१. अनगिनत २. अनोखी ३. उपमाएँ, ४. छिपा हुआ मोती, ५. घटिया, बेइज्जत, ६. काम, ७. एक सीधा ऊँचा दरख्त, ८. पृष्ठभूमि

“ अगच्च हम मुफलिसो-कल्लाश^१ हैं फिर भी फूल की तरह हँसने की कोशिश करते रहते हैं । ”

आखिर में लैला के दान की तश्वीह खुसरो के ‘गुलफशाँ-कलम^२’ से यूं निकली है :

गिरियाँ जिगरे-जमीं कुशादंद ।
बाँ ‘काने-नमक’ दरु नेहादंद ॥

“ लोगों ने अश्कवार^३ आँखों से ‘ जमीन का जिगर^४ ’ चाक किया और उसमें वह ‘ काने-नमक^५ भर दी ।

इन हसीन तश्वीहात की जितनी भी दाद^६ दी जाए कम है । लैला को ‘ काने नमक ’ से तश्वीह देना और उसकी मुताबिवत^७ से ‘ जिगरे-जमीं ’ जैसी खूबसूरत^८ तरकीब इस्तेमाल करना खुसरो ही का हिस्सा था ।

मजनूँ जे मियाने अंजुमन जस्त ।
उपताद ब-दर्खणए-लहद पस्त ॥
बिगिरिफत अरूस रा दर आगूश ।
रु दाशत ब-रु व दूश वर दूश ॥
खीशाने-सनम जे शर्मे आँ कार ।
जस्तंद ब-गैरत अंदराँ गार ॥

करदंद ब-जुंबिश आज्ञमूनश ।
अज़ जाँ रमकी न दाशत खूनश ॥
बाजू के हमाइले-सनम गश्त ।
अज़ हम न-कुशाद बस के खम गश्त ॥
पीरी दू सेह अज़ बुजुर्गवाराँ ।
गुफतंद ब-चश्मे सैल-बाराँ ॥
कीं कार न-शहवते हवाईस्त ।
सिरीं जे खज्जीनए-खदाईस्त ॥
वरन् ब-हक्स कसी न जूयद ।
कज़ जाने-अजीज दस्त शूयद ।

१. गरीब-कंगाल, २. फूल वरसानेवाली लेखनी, ३. रोते हुए, ४. जमीन का दिल, धरती की छाती, ५. नमक की कान, ६. तारीफकी जाए, ७. उसके मुताबिक ८. संयुक्त, शब्द प्रयोग ।

खुश वक्त कसी के अज़ दिले-पाक ।
 दर राहे-वफा चुनीं शबद खाक ।
 वस्ल अचें : ब-अहले-दिल बबालअस्त ॥
 वस्ली के चुनीं बुवद हलालअस्त ॥

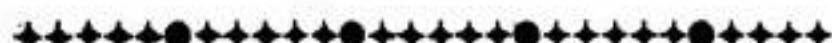
“ मजनूं लोगों की भीड़ चीरता हुआ आगे बढ़ा और बे-खतर^१ लैला की कब्र में कूद पड़ा । फिर उसने अपनी दुल्हन को अपने आगोश में भेंचकर गाल पर गाल रख दिया और शाने^२ पर शाना ! लैला के अजीजों को मजनूं की यह हरकत नागवार^३ गुज़री । गैरत^४ के मारे वह भी फौरन कूद पड़े ताकि मजनूं का काम तमाम कर दें । उन्होंने उसे झंझोड़कर अलाहिदा करना चाहा । उसके बाजू लैला की गर्दन में बुरी तरह जकड़े हुए थे और उसमें नाम को भी जान बाकी न थी । चंद बुजूगों^५ ने मशविरा दिया कि बे-हतर तो यह है कि अब दोनों को यूँ ही दफन कर दिया जाए । मजनूं की यह हरकत शेहवत^६ व हवसरानी^७ नहीं बल्कि कुदरत का एक राज है । महज ‘हवसे-नफस’ की खातिर कोई अपनी अजीज जान से हाथ धोने के लिए तैयार नहीं होता । खुशनसीब है वह इन्सान जो राहे-वफा में इन्तेहाई पाकदामनी के साथ इस तरह जान दे दे ! अर्गचि : अहले दिल के नजदीफ वस्ल^८ अजाब होता है फिर भी इस किस्म का वस्ल जाइज़ व हलाल है—

मगें- मजनूं पे अबल गुम है ‘मीर’
 क्या दीवाने ने मौत पाई है ! !

१. बेघड़क, २. कंधा, ३. नापसंद, ४. शर्म, ५. बड़े लोगों ने, ६. काम-वासना,
 ७. भोग, ८. ईश्वर के सच्चे प्रेमियों के लिए एक कड़ीसज्जा है ।

अमीर खुसरो : हिन्दी के आदि कवि

एस. शाहजहाँ



भारत की महान सांस्कृतिक परम्परा के इतिहास को लिपिबद्ध करते समय अमीर खुसरो के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान आरक्षित करना होगा। क्योंकि प्रतिभा के इस महासंगम में साहित्य, संगीत एवं जनजीवन की भिन्न धाराओं का मिलन हुआ था। मन की वीणा की तारों में अनुभूतियों के राग छेड़कर, गतिमय जीवन की लय को स्वर में बाँधना कोई आसान काम नहीं। अमीर ने इस असाध्य की साधना में अपने जीवन को धन्य बना दिया था। इसलिए आज सात सौ साल बीत जाने के बाद भी उनकी स्मृति के फूल मुझ्हाए नहीं।

हिन्दी के आदिकवित्व के पद के किए सर्वथा योग्य पुरुष अमीर खुसरो ही है। प्रमङ्गों के आधार पर इस बात का समर्थन श्री किंशा जा सकता है। सत्य को अनबेदा

करने से लाभान्वित होने की आशा नहीं की जा सकती। पंक्तियों के बीच छिपे अलिखित अर्थ को समझने के लिए समीक्षा के पन्नों पर नया आलोक फेंकना होगा। हमारे समालोचकों के दृष्टिकोण के सीमित दायरों के बाहर कई ऐसी महत्त्वपूर्ण बातें छिपी पड़ी हैं, जिनका पूनर्मूल्यांकन किए बिना विश्वभाषा हिन्दी की आत्मा को समझा नहीं जा सकता।

अमीर खुसरो का आदिकवित्व हिन्दी की उम्र पर आधारित है। खड़ी बोली का शुभजन्म कब हुआ था और उमकी पार्श्वभूमि क्या थी, आदि बातों पर प्रकाश डाले बिना किसी निष्कर्ष पर पहुँचना असंभव है। वैज्ञानिक दृष्टि को अपनाकर निलिप्त भाव से देखा जाए तो कहना पड़ेगा कि हमारी हिन्दी नई भाषा है। हिन्दी प्राचीनता के खंडहरों से उभरी हुई मृत भावना की भाषा नहीं है। युग-चेतना के अनुरूप जनता द्वारा विरचित जनता की भाषा है हिन्दी। इस तथ्य का निराकरण कर प्राचीनता के मोह में पड़ना और पिंगल, अपभ्रंश या अवधी साहित्यों को हिन्दी के अन्तर्गत मानना नितान्त अवैज्ञानिक है। हिन्दी साहित्य पढ़ते समय इस अहिन्दी-भाषी लेखक को हमेशा यह संदेह होता रहा है कि पृथ्वीराज रासो या अद्विमाण कृत सन्देशरासक से इस बेचारी हिन्दी का क्या संबंध है? पद्मावत, मानस या सूरसागर को हिन्दी की कृतियाँ मानने से भले ही एक आनन्द मिले परन्तु माननेवाले को सत्य से कोसों दूर रहना पड़ेगा।

प्राचीनता का मोह निभानेवालों ने ब्रज, अवधी, राजस्थानी और मैथिली को हिन्दी की बोलियाँ मानकर खेन की साँस ली है। आँख मूँदकर अन्धकार की सृष्टि करनेवालों को आगामी पीढ़ी किस दृष्टि से देखेगी यह बात विचारणीय है। सच पूछो तो उपभाषा या बोली, किसी भाषा के बोलने का ढंग मात्र है। एक बोली और दूसरी बोली में इतना अन्तर नहीं हो सकता कि सुननेवाले की समझ में ही न आए। इस भाषा-वैज्ञानिक तत्त्व के आधार पर देखा जाए तो ब्रजभाषा, अवधी या मैथिली हिन्दी की बोलियाँ कभी नहीं मानी जा सकतीं। अर्थ, ध्वनि, वाक्यविन्यास और शब्द-चयन की दृष्टि से खड़ी बोली और ऊपर लिखित भाषाओं में काफी अन्तर है। समानता दिखाकर प्राचीनता का मोह निभाने के लक्ष्य से देखा जाए तो शायद इसके अनुकूल एकाध बात मिल भी सकती है। तमिल भाषा में बड़ी मात्रा में पाए जानेवाले हिन्दी शब्दों को एकत्रित कर कोई तमिल को हिन्दी से जन्म भाषा स्थापित करने की कोशिश करे तो उसे क्या कोई भाषा-वैज्ञानिक मान्यता दे सकेगा?

हिन्दी की तथाकथित बोलियों के संबन्ध में उठाए गए अक्षेपों का जब्राब कुछ समालोचक इस प्रकार दे सकते हैं कि हर भाषा का प्राचीन, साहित्य नए

साहित्य से भिन्न होता है अतः भाषा भी भिन्न रहती है। वात एक हद तक ठीक ही लगती है। लेकिन अवधी, ब्रज, अपभ्रंश साहित्य के रूप और खड़ी बोली की शैली की तुलना करते समय यह स्पष्ट हो जाता है कि ये एक ही भाषा की भिन्न शैलियाँ नहीं हैं। क्योंकि शैली में शब्दों का हेर-फेर थोड़ा-बहुत हो सकता है। वाक्यविन्यास और ध्वनिप्रक्रिया की दृष्टि से उनमें समानता होती है। ध्वनि परिवर्तन अगर होता है तो उसके विशेष कारण और नियम भी होते हैं। उपर्युक्त भाषाओं के साहित्य की शैलियों को किसी विशेष नियम के अंदर बाँधना, असंभव लगता है। हिन्दी के अन्तर्गत मानी गई भाषाओं की पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत करते हैं। उनको देखने से पता चल जाएगा कि अवधी, ब्रज, अपभ्रंश और खड़ी बोली हिन्दी से भिन्न भाषाएँ हैं।

परणाबा चाल्यो बोसलराय
चउरास्या सहु लिया बोलाइ ।
जाम-तणो साजति करउ
ज रह रंगावली पहरज्यो टोप ।

(बोसलदेव रासो)

○ ○ ○
षुरासन मुलतान खंधार मोर
बलष स्यो बलं तेग अचूक्क तीर ।
रहंगी फिरंगी हलब्बी सुमानी ।
ठटी ठट्ट भलोच्य ढाल निसानी ।

(पृथ्वीराज रासो : पद्मावती समय)

○ ○ ○
कालि कहल प्रिय सांझहि रे जाइबि मइ मारू देस ।
मोए अमागिलि नहीं जानल रे, सँग जइतंब जोगिनी बेस ।
(विद्यापति)

बँदि भा सुआ करत सुख केली ।
चूरि पाँख मेलेसि धरि ढेलो । १।
तहवां बहुत पखि खरभरहीं
आपु आपु कहैं रोदन करहीं । जायसो ।
(पदमावत : सुआ खंड १०)

अभिय मूरिमय चूरन चारु
समन सकल भव रुज परिवारु
सुकृति संभु तनु विमल विभूति
मंजुल मंगल मोद प्रसूति ।

(तुलसी)

◦ ◦ ◦

ऊधौ ! तुम यह निहचै जानौ ।
मन, क्रम बच मैं तुझ्हें पठावत ब्रज को तुरत पलानो ।
पूरन ब्रह्म, सकल अदिनासी ताके तुम हौं ज्ञाता ।
रेख न रूप जाति कुल, नाहीं जाके नहिं पितु माता
यह मत दै गोपिन कहैं आवहु बिरह नदी में भासत
सुर तुरत यह जाए कहौं यह ब्रह्म बिना नहीं आसत ॥

(सूरदास)

◦ ◦ ◦

उक्त उदाहरणों से पता चलता है कि ये पंक्तियाँ एक ही भाषा की भिन्न शैलियाँ नहीं अपितु भिन्न भाषा की भिन्न शैलियाँ हैं। केवल हिंदी जाननेवाला व्यक्ति इन पंक्तियों को कदापि नहीं समझ सकता। अवधी और ब्रज को हिंदी की बोलियाँ मानने की सबसे अवैज्ञानिकता का स्पष्ट उदाहरण है ये पंक्तियाँ। अतः हिंदी का इन भाषाओं से सिर्फ नाम मात्र का संबंध है। इस कारण इनका साहित्य हिंदी का साहित्य नहीं। चटर्जी के मत में भी ब्रज भाषा, कनौजी एवं बुन्देली देशज हिंदुस्थानी तथा बांगला से कुछ महत्वपूर्ण बातों में भिन्न है।^१

हिंदी के उद्गम और विकास पर कई भाषा वैज्ञानिकों ने प्रकाश डाला है। हिंदी-भाषी होने के कारण इन में से अधिक विद्वानों का लक्ष्य भाषा की प्राचीनता निभाना मात्र था। इसलिए इधर-उधर प्रमाण चुनकर हिंदी को अपभ्रंश बंशजा स्थापित करने की कोशिश इन लोगों ने की है। परन्तु डॉ. सुनीतकुमार चटर्जी जैसे मूर्धन्य विद्वान ने हिंदी के उद्गम की कहानी विशेष ढंग से कहने का महनीय प्रयास किया है। ‘भारतीय आर्य भाषा और हिंदी’ में उन्होंने कई ऐसी बातें कही हैं, जो विचारणीय होते हुए भी विवादास्पद हैं। इसका कारण यह है कि खड़ी बोली को वे अपभ्रंश की सन्तान नहीं मानते। अतः उन्होंने कहा है— “इस प्रकार पश्चिमी अपभ्रंश को एक तरह से ब्रजभाषा एवं हिंदुस्थानी की उनके बिल्कुल पहले

१. भारतीय आर्य भाषा और हिंदी, पृ. १९६

की पूर्वज कहा जा सकता है।” विद्वान् लेखक ने जान-बूझकर ही “एक तरह से और “कहा जा सकता है” आदि शब्दों का प्रयोग किया है। आगे इस बात को बिल्कुल स्पष्ट रूप में लेखक ने कहा है।

वास्तव में खड़ी बोली हिंदी के विकास का प्रारंभ ग्यारहवीं शताब्दी से मानना चाहिए। यह तथ्य ऐतिहासिक बातों पर भी आधारित है। उस समय महमूद गजनवी ने भारत पर चढ़ाई की और पंजाब पर अपना अधिकार जमा लिया। विदेशी शासकों ने वहाँ की जनता से आदान-प्रदान शुरू किया था। फल-स्वरूप, पंजाबी, तुर्की और ईरानी भाषाओं के शब्दों से मिश्रित एक नई भाषा का जन्म हुआ। दो मिन्न संस्कृतियों के मेलजोल से संयोगवश जन्मी हुई नई भाषा थी यह। वैसे यह साधारण जनता की गँवार भाषा थी। इस भाषा का आधार अप्त्रिंश मानना ठीक नहीं ब्योंकि यह अप्त्रिंश स्वयं इस समय हिंदुस्तान में अपने आद्य प्राकृत या मध्ययुगीन भारतीय आर्य स्वरूप से बदलकर पश्चकालीन देशज वर्नाकुलर अथवा नव्य भारतीय आर्य भाषा की अवस्था को प्राप्त कर रही थी, यद्यपि यह परिवर्तन पंजाब में नहीं हो रहा था। अतएव इस नूतन आदान-प्रदान की भाषा का शताब्दियों तक तो अस्थिर या बराबर परिवर्तित रूप में रहना अनिवार्य था।^१ तो हमारी खड़ी बोली हिंदी की आधारभाषा अप्त्रिंश नहीं अपितु “इस हिंदी की मूलाधार खास करके देशज हिंदुस्तानी तथा बाँगरू समूह एवं कुछ हद तक पूर्व पंजाब की बोलियाँ हैं।”^२

पृथ्वीराज चौहान के पतन के बाद बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में गोरी के अनुयायी दिल्ली पहुँचे। पंजाब में बीज रूप में उद्भूत खड़ी बोली नामक जन भाषा का प्रयोग उन्होंने दिल्ली में भी किया। धीरे-धीरे दिल्ली में :स विशेष भाषा शैली का प्रचार होने लगा। पंजाब से आई हुई यह जन-भाषा देहलवी, हिंदुस्तानी या हिंदवी जैसे नामों से विख्यात हो गई। आगे जब यह दख्खन पहुँची तो इसका नाम जबाने उर्दू-ए मुअल्ला पड़ा जो बाद में फारसी लिपि में लिखी जाने लगी और आधुनिक उर्दू का प्राथमिक रूप बनी।

इस विवेचन से यह निर्विवाद हो जाता है कि हमारी हिंदी का जन्म ग्यारहवीं सदी में जनता की जिब्हा से हुआ था। बोलचाल की साधारण भाषा ही इसका

१, २. भारतीय आर्य भाषा और हिंदी, पृ. १९५

अ. खु....४...

आधार थी। अतः न यह अपभ्रंश से जन्मी है और न इसका ब्रज-अवधी भाषाओं से संबंध है।

अब देखना है कि इस नई भाषा खड़ी बोली का प्रथम कवि कौन है। आदिकवि के स्थान के लिए वही सर्वदा योग्य होगा जिसने इस जनभाषा में कुछ कहने का प्रयास किया हो। निजामुद्दीन द्वारा लिखित 'तबकात-ए-अकबरी' में कलंजर के राजपूत नरेश द्वारा हिंदू भाषा में पद्य लिखने का उल्लेख है। परन्तु न ये पद्य प्राप्त हुए हैं और न इस कथन का कोई विशेष प्रमाण है। कहा जाता है कि ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में जीवित मसऊद इब्ने साद ने हिंदी में पद्य-रचना की थी। लेकिन यह भी प्राप्त नहीं है।

खड़ी बोली हिंदी की मधुमयी काव्यधारा का श्रीगणेश हिंदी के आदिकवि अमीर खुसरो के हाथों हुआ था। निस्संदेह अमीर खुसरो ही खड़ी बोली हिंदी के प्रथम कवि हैं। खुसरो साहब ने एक ऐसे समय पर हिंदी नामक नाबालिग लड़की को सहारा दिया जब सब कहीं फारसी, ब्रजभाषा और अवधी का राग-विलास हो गया था। ऐसे ठीक अवसर पर जनभाषा में काव्य-रचना कर उन्होंने न केवल जनता की अभिलाषा का समर्थन किया, परंतु इस भाषा के प्रति अपने मन में उत्पन्न प्रेम एवं श्रद्धा को प्रकट किया। इसलिए तो खुसरो ने कहा था, "मैं हिंदुस्तान की तूती हूँ। अगर तुम वास्तव में मुझसे जानना चाहते हो तो हिंदवी में पूछो! मैं तुम्हें अनुपम बातें बता सकूँगा।" दुर्भाग्य-वश इस महात्मा की अमर साधना का मूल्यांकन तटस्थ भाव से आज तक किसी ने नहीं किया। उन्मुक्त भाव से, गहनता के साथ उनकी काव्य साधना का विवेचन किया जाना चाहिए।

हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने अमीर खुसरो के प्रति क्यों ध्यान नहीं दिया यह बात समझ में नहीं आती। व्यवस्थित रूप में साहित्य का प्रथम इतिहास लिखनेवाले प. रामचंद्र शुक्ल ने फुटकर रचनाओं के अन्तर्गत खुसरो के काव्य का परामर्श कर इस महाकवि की प्रतिभा के प्रति अन्याय किया है। कई बातों में शुक्लजी का दृष्टिकोण तटस्थ नहीं माना जा सकता। उदाहरण के रूप में तुलसीदास के प्रति उनका जो असीम प्रेम है वह समालोचना की दृष्टि से शोभा नहीं देता। शुक्लजी के वर्गीकरण और विवेचन पर हस्तक्षेप करने की हिम्मत पीछे आनेवाले समालोचकों को नहीं हुई। फिर उर्दू बोली में से एकाध व्यक्ति ने मुसलमान होने के नाते खुसरो को अपना कवि मान लिया। जब उर्दूवाले मैदान में

आ गए तो हिंदीवाले इस कवि को छोड़कर भाग पड़े। अमीर खुसरो के प्रति किए गए अन्याय का एकमात्र कारण यही हो सकता है।

कवि के रूप में अमीर खुसरो का क्या स्थान है, इस बात पर भी प्रकाश डालना है। लिखित या संग्रहीत काव्य के अभाव में अमीर खुसरो के काव्य की समीक्षा करना कठिन कार्य है, फिर भी परम्परा से प्राप्त, मौखिक रचना के आधार पर इनकी प्रतिभा की अद्वितीयता का पता लगाया जा सकता है। इनकी भाषा इतनी सुन्दर और कुँवारी है कि उसकी मादकता में अनुवाचक भावविभोर हुए बिना नहीं रह सकता। डॉ. जगन्नाथप्रसाद शर्मा के मत में “खड़ी बोली का सर्वप्रथम व्यावहारिक तथा व्यवस्थित प्रयोग हमको अपीर खुसरो की कविता में मिलता है”^१

खुसरो की भाषाशैली अत्यन्त सरल और स्वाभाविक है। वास्तव में जनता के उद्गारोंको साधारण ढंग में आविष्कृत करने का महत्वीय प्रयास मात्र है खुसरो का काव्य। उसमें न पाण्डित्य प्रदर्शन का ढोग है या कृत्रिमता का भार। वह मन से मन की ओर बहनेवाली भाव-सरिता है जो अपने सहज रूप में ही मोहर है।

खुसरो की भाषा की सरलता और शैली की सुन्दरता देखिए:-

एक कहानी मैं कहूँ, तू सुन ले मेरे पूत ।
बिना परों वह उड़ गया, बाँध गले मैं सूत ॥

○ ○ ○

इयाम बरन और दाँत अनेक, लचकत जैसे नारी ।
दोनों हाथ से खुसरो खींचे और कहे तू ‘आरी’ ॥

○ ○ ○

मेरा मौं से सिंगार करावत । आगे बैठ के मान बढ़ावत ।
बातें चिक्कन ना कोई दीसा । ए सखी साजन, ना सखि सोसा ।

○ ○ ○

रोटी क्यों सूखी ?
बस्ती क्यों उजड़ी ?
—खाई न थी ।

○ ○ ○

सितार क्यों न बजा ?
 औरत क्यों न न्हाई ?
 —परदा न था ।

○ ○ ○

अमीर खुसरो एक क्रान्तिदर्शी कवि हैं। समय के आगे वे देख सकते थे। युगों के बाद बोली जानेवाली भाषा के रूप को भली भाँति उन्होंने समझ लिया था। वे चाहते तो अवधी भाषा में या ब्रजभाषा में काव्य कर सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। काव्य-रचना के लिए जिन काव्य-रूपों का उन्होंने प्रयोग किया, वे भी उनकी दूरदर्शिता के परिचायक हैं। फारसी के पारंगत खुसरो उस परंपरा के अनुसार हिंदी में भी कोई मसनवी लिख सकते थे, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। वे गीत, मूकरियाँ, पहेलियाँ आदि लिखकर जनता के मन में प्रवेश कर गए। अगर खुसरो ने कोई महाकाव्य रचा होता तो पण्डितों या विद्वानों ने उनकी बड़ी ग्रंथांसा की होती और इतने से बात भी खत्म हो जाती। खुसरो ने ऐसे काव्य की रचना की जिसके सहारे वे युगों से जनता के जीवन से एकाकार होकर आज तक जी रहे हैं। अलिखित काव्य के आधार पर इतना जनमत प्राप्त करना कोई साधारण कार्य नहीं। यही उनकी असीम प्रतिभा और दीर्घवीक्षण का परिचायक है। सचमुच आज से सात सौ साल पहले उन्होंने आधनिक साहित्य की नींव डाली थी।

अमीर खुसरो ने जिस काव्यशैली का आविष्कार किया, वह आगे भी चलती रही। परंतु 'बाजार' भाषा मानकर कई कवियों ने इसे अपनाया नहीं। खड़ी बोली को गँवार समझनेवाले उन ब्रजभाषा और अवधी भाषा के कवियों को सर पर बैठाकर उनकी महिमा का हमने खूब यशोगान गाया। यही तो हिंदी की समालोचना में विचित्रता है। खड़ी बोली की परम्परा को निभाने वालों में संत कवियों का नाम आता है। कवीर ने अपने काव्य में इस खड़ी बोली हिंदी का असीम प्रयोग किया है। वैसे तो कवीर ने सभी बोलियों से शब्द उधार लिए हैं। फिर भी खड़ी बोली का निखरा रूप कहीं-कहीं उनके पदों में दृष्टिगत होता है।

झूठा लोग कहैं घर मेरा ।
 जा घर माहैं बोलै डोलै, साईं नहीं तन तेरा ।
 बहुत बंध्या परिवार कुटुंब, मैं कोई नहीं ए सकेरा

काहेरी नलनी तू कुमिलानी
तेरे ही नालि सरोदर पानी
जल में उतपति जल में बास
जल में नलनी तोर निवास ।

खुसरो और कवीर की भाषा में तुलना की जाए तो आसानी से पह विदित होगा कि कहीं-कहीं कवीर ने इस खड़ी बोली की शैली को ध्यान के साथ अपनाने का प्रयास किया है। कवीर के दोहों में तो यत्रतत्र खड़ी बोली का रूप मिलता है। अर्थात् जिस परंपरा का आरंभ खुसरो ने किया था, उसको एक छोटी सीमा तक कवीर ने निभाया था। संत परंपरा के अन्य कवियों ने खड़ी बोली में काव्य रचना की। नानक, दादू दयाल, मलूकदास, दरियासाहब आदि सतों की कविता में इस खड़ी बोली की अलक मिलती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि खुसरो की भाषाशैली का अनुकरण और अनुसरण बड़ी तेजी से हो रहा था। चटर्जी के शब्दों में “पन्द्रहवीं शती में ही नवोदित हिंदी ने काफी उन्नति कर ली थी और इसका प्रभाव अन्य प्रतिष्ठित उत्तर भारतीय साहित्यिक बोलियों पर पड़ चुका था।”^१

प्रस्तुत विवेचन से यह बात असन्दिग्ध रूप से स्पष्ट हो जाती है कि हिंदी नई भाषां है और इसके आदिकवि अमीर खुसरो हैं। खुसरो की भाषा शैली का प्रभाव परवर्ती कवियों पर पड़ा था और खड़ी बोली को थोड़ा-बहुत विकसित करने में संत कवियों ने सहयोग दिया था। इसके बाद बहुत समय तक हिंदी साहित्य के क्षेत्र से बहिष्कृत-सी रही। क्योंकि इस समय हिंदी में अधिकतम रचनाएँ नहीं हुई। ब्रज और अवधी भाषाओं से इस समय उसका संघर्ष हो रहा था। साहित्य के क्षेत्र से बाहर रहते समय भी हिंदी ने जन-हृदय का सिंचन किया था और साथ-साथ आत्मविकास भी। जब अवधी-ब्रजभाषाओं का प्रकाश धूमिल हुआ तो खड़ी बोली हिंदी की दिव्यज्योति जनपथ से साहित्य पथ को प्रदीप्त करने लगी और आज विश्वभाषा का स्थान प्राप्त कर गई। हिंदी भाषा और साहित्य के इस महान इतिहास की प्रथम पंक्तियाँ लिखनेवाले अमीर कवि थे अमीर खुसरो।

● ● ●

१. कवीर और उनका काव्य—डॉ. भोलानाथ तिवारी

२. भारतीय आर्य भाषा और हिंदी, (पृ. २०९)

अमीर खुसरो और राष्ट्रभाषा हिंदी

श्रीरंजन सूरदेव



राष्ट्रभाषा हिंदी के स्वरूप—विकास के पोत-ध्वजवाहियों में अमीर खुसरो पांक्तेय स्थान के अधिकारी हैं। छान्दसोत्तर आयं भारतीय परिवार की भाषाओं की जन्मदात्री अपभ्रंश के विद्वान् आचार्य हेमचंद्र (वि. ११४४) के समय राष्ट्रभाषा अपभ्रंश की गोद में पली और वह हेमचंद्र के उत्तरवर्ती अमीर खुसरो (वि. १३४०) के समय अपभ्रंश की गोद से निकलकर अपने पैरों पर खड़ी हुई और चलने का उपक्रम करने लगी। इसी समय से राष्ट्रभाषा हिंदी की पूर्वरूपी खड़ी बोली का स्वरूप निर्धारित हुआ। अमीर खुसरो इसी खड़ीबोली के आदि कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए। दिल्ली-निवासी अमीर खुसरो की रचनाओं के परिवेश और प्रभाववश यह खड़ी बोली 'दिल्ली की भाषा' भी कहलाई।

स्वयं खुसरो, गुलाम-वंश के पतन और तुगलक-वंश के शासकीय उत्थान के समय दिल्ली-दरबार से सम्बद्ध थे, परंतु खुसरो का वैशिष्ट्य इस मानी में है कि उन्होंने न कभी राजनीति की द्वारपूजा की और न कभी धर्म के ही धकापेल में पड़े। वे जल में कमल की तरह दरबार में रहे और जनता की भाषा में जनता के लिए लिखते रहे। सिद्धांतों और मतों की गहन गुहा में न जाकर उन्होंने आनंद और विनोद की स्वच्छन्दता को आत्मसात किया और इस प्रकार राष्ट्रभाषा हिंदी के साहित्य को पहेलियों और मुकरियों जैसी नव्य विधाओं से समृद्ध किया।

इस संदर्भ में हम राष्ट्रभाषा हिंदी की विकास स्रोतस्वनी खड़ी बोली के मूल पर्यावरण पर विचार करेंगे, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि अपभ्रंश और हिंदी की संक्रमणकालीन भाषा और खड़ी बोली की प्रकृति परवर्ती अपभ्रंश में उपलब्ध होती है। इसके असंख्य असंदिग्ध उदाहरण 'सन्देशरासक', 'प्राकृतपंगल', 'उक्तिव्यक्तिप्रकरण', 'मदनपराजयचरित', 'वर्णरत्नाकर', 'कीर्तिलता' आदि अपभ्रंश-कृतियों में सुरक्षित है। प्राकृत और अपभ्रंश के प्रसिद्ध वैयाकरण हेमचंद्र का निम्नांकित दोहा खड़ी बोली का अतिप्रचलित उदाहरण है :

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कंतु ।
लज्जेजंतु वयसिअहु जह भगा घर एंतु ॥

अपभ्रंश-निबद्ध जैनसाहित्य वर्तमान हिंदी-साहित्य की विकास-शृंखला की एक महत्वपूर्ण कड़ी है क्योंकि अपभ्रंश-जैन साहित्य की भाषा 'पुरानी हिंदी' मानी गई है। हेमचंद्र के उत्तरवर्ती काल में, राज्य क्रांतिमूलक राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण, पारस्परिक संबंध-सूत्र के विच्छिन्न हो जाने से विभिन्न प्रदेशों में अपभ्रंश या देशभाषा विभिन्न रूपों में विकसित हुई। फलतः गुजराती, राजस्थानी, हिंदी आदि भाषाओं के पूर्वरूपों का अपने-अपने प्रांतों में स्वतंत्र विकास हुआ। इसी आधार पर ब्रजभाषा के समर्थक को यह मानना अयुक्तियुक्त नहीं प्रतीत हुआ कि अपभ्रंश से डिंगल का एवं डिंगल से पिंगल या ब्रजभाषा का विकास हुआ है और ब्रजभाषा में उर्दू के मिश्रण से कृत्रिम खड़ी बोली खड़ी हो गई।^१

अमीर खसरो की भाषा, खासकर उनकी पहेलियों और मुकरियों की भाषा पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाएगा कि खुसरो के फारसी गत पांडित्य ने ब्रजभाषा

१. 'खड़ी बोली का आंदोलन' डॉ. शितिकण्ठ मिश्र, पृ. २०।

के तत्कालीन प्रभाव-स्पर्श से अभिभूत होकर जिस भाषा को जन्म दिया, वह खड़ी बोली की निकटवर्ती सिद्ध हुई, जो आगे चलकर राष्ट्रभाषा हिंदी के निर्माण की पूर्वपीठिका बनी। कहना न होगा कि हिंदी के जिस स्वरूप को राष्ट्रभाषा का सम्मान प्राप्त हुआ है, वह 'खड़ी बोली' हिंदी ही है।

अमीर खुसरो फारसी के भी बहुत बड़े कवि थे। उनके द्वारा रची गई पुस्तकों की संख्या एक सौ मानी जाती है। फारसी के अतिरिक्त 'खड़ी बोली' हिंदी के प्रति उनका गहरा अनुराग था। यही कारण है कि वे हिंदी को फारसी से किसी प्रकार भी होन नहीं मानते थे। उन्होंने अपनी 'आशिका' नाम की रचना में हिंदी की प्रशंसा करते हुए इस आशय की बात लिखी है कि यदि आप अच्छी तरह से विचार करेंगे तो हिंदी को फारसी से किसी प्रकार भी हीन न पाएँगे। 'उन्होंने 'खालिक बारी' नामक एक फारसी-हिंदी-कोश की भी रचना की थी। कहते हैं, 'खालिक बारी' के वितरणार्थ खुसरो ने ऊँटों और गाड़ियों का इस्तेमाल किया था। इस प्रकार वे न केवल राष्ट्रभाषा हिंदी के लेखक या स्वरूप-निर्धारक थे, अपितु हिंदी के बहुत बड़े प्रचारक भी थे। उन्होंने जो खड़ी बोली की प्रशंसा की है, वह राष्ट्रभाषा हिंदी की ही प्रशंसा है। उनके समक्ष राष्ट्रभाषा हिंदी का जो स्वरूप उभरा था, वह जन-साधारण के व्यवहार की भाषा में प्रचलित एवं प्रतिफलित था। इसीलिए, उन्होंने काव्यभाषा छोड़कर काव्यरूद्धियों की परवाह किए बिना, जनभाषा में रचना की। साथ ही, छंदों और रागिनियों में भी बंधनों और परम्पराओं के अनुकरण से अलग हटकर मौलिक उद्भावनाओं का प्रदर्शन किया। उन्होंने काव्य के क्षेत्र में जहाँ जन-सामान्य विषय को अपनाया, वहाँ भाषा के क्षेत्र में खड़ी बोली को अंगीकृत किया। और, खुसरो की यही खड़ी बोली आज राष्ट्रभाषा हिंदी के पद पर आसीन हुई।

प्रसंगवश ज्ञातव्य है कि हिंदी अनेक भाषाओं के रिकथ से परिवृहित हुई है। खुसरो स्वयं फारसी और खड़ी बोली हिंदी के अलावा और भी अनेक प्रादेशिक भाषाओं के मर्मज्ञ थे। उन्होंने अपनी एक काव्येतिहासकृति 'नौ-आकाश' या 'नुह-सिपहर' के अध्याय में भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया है। इसमें उन्होंने सिदी (सिंधी), लाहोरी (पंजाबी), कश्मीरी, कबर, घोरसमन्दरी, तिलंगी (तेलंगी, तेलगु), गुजर (गुजराती), मअबरी (कारो समुद्र तट की तमिल), गौरी (गौड़ी-पश्चिम बंगाल), बंगाल (बँगला), अवद (अवधी, पूर्वी हिंदी) और दिल्ली तथा उसके आसपास की भाषा, इन सभी औदीच्य और दाक्षिणात्य भाषाओं

का सर्वेक्षण किया है।^३ इसी का फल है कि उनकी खड़ी बोली की रचना में जहाँ भाषा-भूयिप्तता की शाविदक सशक्तता है, वहीं उसे बहुव्यापक जनसाधारण की रसनाग्रवर्तिनी बनकर दीर्घजीवी होने का संयोग भी सुलभ हुआ है; क्योंकि यह मानी हुई बात है कि कोई भी गद्य या पथकृति अपनी भाषा की भूमिमयी शक्तिमत्ता से ही प्राणिनी या कालातीत (क्रासिकल) बनती है। स्वयं उन्होंने इस बात को स्वीकार किया है कि हिन्दुई या हिंदी-भाषा अनेक भाषाओं के शक्ति-समाहरण से उपस्थित हुई है। इस प्रसंग में 'नुह सिपहर' के कुछ द्वैत द्रष्टव्य हैं।

हिन्द हमीन काइदः दारद ब-सुखुन ।
 हिन्दुई बूद अस्त दर अंयामे-कुहुन ॥
 सिन्दी ओ-लाहोरी ओ-कश्मीरी ओ कबर ॥
 घोर समन्दरी ओ-तिलंगी ओ-गुजर ॥
 मअबरी-ओ-गौरी ओ-बँगाली अवद ॥
 दिहली ओ-पेरामनश अंदर हमह अंद ॥
 ईन हमह हिन्दवीस्त कि जि अंयामे-कुहन ॥
 आम्मह ब-कारअस्त ब-हर गूना सुखुन ॥^१

(वैत-सं. ४९, ७१, ७२ और ७३)

अर्थात्, भारत में भाषा के विधि-नियम बने हुए थे। हिन्दुई भाषा का अस्तित्व प्राचीन काल में था और आज भी पाया जाता है। सिन्दी, लाहोरी, कश्मीरी, कबर, घोरसमुद्री (कन्नड) तिलंगी, गुजर मअरबी और बँगला, अवधी, दिहली और उसके पार्श्ववर्ती सीमा के अंदर खड़ी बोली की सभी भाषाएँ हिन्दुई यानी हिंदी हैं जो पुराकाल से हर प्रकार की वाणी के लिए जन-साधारण के काम आती रही हैं।

अमीर खुसरो ने अपने कृतियों के माध्यम से राष्ट्र के भाषिक एवं सांस्कृतिक उत्कष्टों को उदात्तता के साथ उत्कीर्ण किया है। फलतः, उनकी रचनाओं द्वारा जहाँ स्वरूप-निर्धारण हुआ है, वहीं राष्ट्र की समृद्धि का भी संकेत मिलता है। राष्ट्रभाषा में न केवल राष्ट्रीय चिता ही उभरती है, अपितु वह अंतरराष्ट्रीय

३. विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य त्रैमा. 'परिषद्-पत्रिका' भाषा-सर्वक्षणांक, पृ. २४८.

१. त्रैमासिक 'सम्मेलन-पत्रिका,' भाग ५३, सं. ३-४ में प्रकाशित श्री देवीसिंग व्यंकटसिंग चौहान के लेख से उद्धृत।

समस्याओं को भी अपनी राष्ट्रीय समस्याओं के सन्दर्भ में सोचती और समाधान खोजती है। कहना न होगा कि खुसरो की भाषा में तद्युगीन चितन एक विराट् फलक पट प्रस्तुत हुआ है। खड़ी बोली की काव्यात्मक सम्पन्नता के लिए आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीयुगीन कवियों और लेखकों द्वारा जो चिन्ताएँ प्रकट की गई, उनका आरंभिक विन्यास खुसरो की खड़ी बोली की कृतियों में हुआ था। राष्ट्रभाषा में राष्ट्रवादी तत्त्वों का संयोजन खुसरो की कृतियों का मूल लक्ष्य है। आज छः शतियों के बीत जाने पर भी खुसरो की भाषा की ताजगी यथावत् है। इसका कारण है कि उनकी भाषा सम्प्रदाय के आग्रह से रहित सजी-सँवरी और कटी-छेंटी है तथा तत्कालीन सर्वसाधारण की भाषा का प्रतिनिधित्व करने की क्षमता से भी संपन्न है।

अनेक विद्वानों ने 'नुह सिफहर' का प्रमाणोल्लेख करते हुए खुसरो द्वारा प्रयुक्त 'हिंदी' का अर्थ 'संस्कृत' किया है और इसी आधार पर खुसरो की खड़ी बोली की रचनाओं को अप्रामाणिक करार दिया है। किंतु स्थिति कुछ और ही है। खुसरो के समय खड़ी बोली का हिंदी-रूप संगठित हो रहा था। प्रमुखतः उनके दीक्षानुग्रह निजामुद्दीन औलिया खड़ी-बोली हिंदी के प्रबल अनुरागी (रचनाकार नहीं) थे और खड़ी बोली हिंदी के प्रेमी गुरु के सान्निध्य में खुसरो की रचना हिंदी में ही प्रवाहित हुई, न कि संस्कृत में। अतएव खुसरो को जो अरबी-फारसी और हिंदी का विद्वान् कहा गया है, वह अतिरंजित नहीं है, न ही भ्रमात्मक है। उन्होंने हिंदी का प्रयोग भी 'हिंदी' के अर्थ में ही किया है, न कि संस्कृत के अर्थ में। इस संदर्भ में उनकी निम्नांकित 'आरसी' विषयक पहेली अनुस्मरणीय है।

फारसी बोली आईना । तुर्की ढूँढ़ी पाईना ॥

हिंदी बोली आरसी आए । खुसरो कहे कोई न बताए ॥ १

उक्त पहेली में 'आरसी' को हिंदी-बोली कहा गया है। यहाँ तो स्पष्ट ही 'हिंदी' का प्रयोग 'हिंदी' के लिए हुआ है, संस्कृत के लिए नहीं। अतएव, खुसरो-प्रयुक्त हिंदी शब्द को संस्कृतार्थवाची मानना भ्रमास्पद है और ऐसा भ्रम डॉ. ग्रियर्सन के मत के अन्धानुगमन का ही प्रतिफल है। क्योंकि, ग्रियर्सन महोदय ने अपने प्रसिद्ध 'भारत का भाषा-सर्वेक्षण' ग्रंथ के प्रथम भाग के प्रारम्भ में लिखा है कि 'यहाँ हिंदी से, वास्तव में खुसरो का संस्कृत से तात्पर्य है, न कि उस भाषा

१. 'खुसरो की हिंदी कविता' सं. व्रजरत्नदास, पृ. १८।

से, जिसे हम आज इस नाम से अभीहित करते हैं।^१ ग्रियर्सन महोदय ने 'भारतीय भाषा-सर्वेक्षण' के नाम पर जो अनेक भाषिक भ्रमों को जन्म दिया है, निश्चय ही उक्त भ्रम उन्हीं में एक है। खुसरो ने हिंदी के लिए न केवल 'हिंदी', अपितु 'हिन्दुई' का भी प्रयोग किया है, जिसे हम ऊपर 'नुह सिपहर' की बैत सं.-५९ में देख चुके हैं। खुसरो ने इस बैत में स्पष्ट लिखा है कि यह 'हिंदी की भाषा' है। खुसरो के समय यानी चौदहवीं शती में भारत में संस्कृत जनभाषा के पद से उत्तर चुकी थी और खुसरो तत्कालीन जनभाषा अपभ्रंश-प्रस्तुत हिंदी की वकालत कर रहे थे। ऐसी स्थिति में हिंदी से उनका मन्तव्य 'संस्कृत' कदापि नहीं था। इसके अतिरिक्त वे स्वयं दिल्ली के वासी थे, जो उत्तर भारत के समस्त हिंदी-भाषी-प्रदेश का प्रतिनिधित्व करती थी। खुसरो ने केवल अवधी और दिल्ली के उल्लेखों के आधार पर ही हिंदी का उल्लेख संकेतित किया है। अतएव यह कहना सर्वथा सही होगा कि ग्रियर्सन ने अनेक ऐसे विधान किए हैं जो खुसरो के मूल कथनों से अलग विभ्रष्ट और विसंगत सिद्ध होते हैं। इसी ऋम में खुसरो की 'सिन्दी' को ग्रियर्सन द्वारा 'हिंदी' बतलाया जाना भी दूसरा अयुक्त और असंगत उदाहरण माना जाता है।

इस ऊहापोह से स्पष्ट है कि अमीर खुसरो खड़ी बोली हिंदी के अनन्य आग्रही रचनाकार थे। हाँ, इतना तथ्य अवश्य है कि उनकी रचनाएँ, विशेषतया पहेलियाँ जन-साधारण के हाथों नवीनीकरण का शिकार निश्चित रूप से हुई हैं। फिर भी खसरो ने अपने समय की खड़ी बोली के एकमात्र कृतिकार थे। उनके समसामयिक या पूर्ववर्ती किसी भी लेखक की खड़ी बोली हिंदी में रचना अप्राप्य है।

राष्ट्रभाषा हिंदी की व्यापक महत्ता इस मानी में भी है कि उसमें विभिन्न भाषामूलक हिंदी शब्दों का भी आवश्यक एवं उपयुक्त समायोजन हो। एक सच्चे भाषाशास्त्री और साहित्यकार के सदृश खुसरो ने अपनी कृतियों में आवश्यकतानुसार 'पाइक' (सं. पादिक), 'अच्छू' (सं. अच्छ), 'अलंग' (सं. 'अलंघ'), 'तिरियाँ' (सं. स्त्री), चन्दन, दमामा, कपि, कोडह (कोडी), घाटी जैसे हिंदी-तर भाषामूलक शब्दों का प्रयोग किया है। संस्कृत 'सामन्ता' का अपभ्रंश-रूप 'सावन्त' भी प्रयुक्त हुआ है। खुसरो की कलम से 'तेजी' (मूलतः अरबी 'ताजी', विशिष्ट प्रकार का घोड़ा) शब्द भी प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार प्रयोग में आया है। कहना न होगा कि भारतीय आर्यभाषाओं की परंपरा में 'ताजी' अपभ्रष्ट होकर अधिक परिचित 'तेजी' के रूप में व्यवहृत हुआ है। इसमें संदेह नहीं है कि अमीर खुसरो मनोविनोद के लिए ही रंगीन और कृत्रिम

१. द्र. 'परिषद्-पत्रिका', भाषा-सर्वेक्षणांक. पृ. २४९।

भाषा के प्रयोक्ता नहीं थे बल्कि वे ऐसी राष्ट्रभाषा की आवश्यकता अनुभव करते थे, जिसमें सहजता, राष्ट्रीयता, नवीनता, आधुनिकता और जनोपयोगिता की दृष्टि से व्यापकता एवं विपुलता की पूरी गुजाइश हो। इसके अतिरिक्त, उनकी रचनाओं में व्यावहारिक बुद्धि का भी अनिवार्य संश्लेष है और भारतीयता की अन्तरंगता भी। कहा गया है कि अमीर खुसरो ने कई शासन-परिवर्तन देखे और सांसारिक अनुभवों ने उन्हें व्यावहारिक बुद्धि भी दी। निष्कर्षतः खड़ी बोली से आत्मीय सबंध रखनेवाले अमीर खुसरो भारतीय कवि हैं और उन्होंने भारत के गौरव के गीत गाए।

एक अनुभवसिद्ध एवं व्यवहारसिद्ध कवि के नाते अमीर खुसरो इस बात से वाकिफ थे कि राष्ट्रभाषा में जनता की आवाज़ और उसकी प्रेरणाओं को उपेक्षित नहीं रखा जा सकता। अतएव उन्होंने खड़ी बोली हिंदी का जो स्वरूप निर्धारित किया वह जनता की भाषा और जनता की रुचि को अनुकूलित करता था। फलतः, उनकी पहेलियों, मुकरियों तथा दो सखुन कविताओं में सामान्य जनता की ही भाषा और भावना को स्थान मिला है। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि आचार्य हेमचंद्र ने जिस भाषिक क्रांति का सूत्रपात्र किया, उसका उत्कर्ष अमीर खुसरो की काव्य-रचना में परिलक्षित हुआ। इसे ही यदि, राष्ट्रभाषा हिंदी के संदर्भ में, खड़ी बोली-आंदोलन का कारण-संकेत कहा जाए, तो अतिशयोक्ति न होगी।

१. विशेष विवरण के लिए द्र. डॉ. रामखेलावन पाण्डेय द्वारा लिखित 'हिंदी-साहित्य का नया इतिहास,' पृ. ६७।

खुसरो की मस्नवियाँ

डॉ. शं. के. आडकर



बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार

अमीर खुसरो की सर्वतोमुखी प्रतिभा को भारतीय तथा विदेशी विद्वानों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है। शेर व अदब (काव्य और साहित्य) की वह कौन-सी विधा है जिसमें इनके 'अशहबे कलम' (कल्पना रूपी घोड़े) ने अपने जौहर नहीं दिखाए। गद्य हो अथवा पद्य, गजल हो अथवा मस्नवी, कसीदा हो अथवा मरसिया हर एक काव्य प्रकार में इनकी प्रतिभा का विलास देखते ही बनता है। 'फिर्दोसी', 'सादी', 'अन्वरी', 'हाफिज', 'उर्फी', 'नज़ीरी', 'खांकानी', आदि फारसी कवि अपने-अपने रंग में बाकमाल उस्ताद हैं। इनमें से हरएक ने अपने लिए किसी एक काव्य प्रकार को अपनाकर उसी में अपने काव्य-कौशल का

परिचय दिया है। शेख सादी का गजल में, फिर्दोसी का मस्नवी में जवाब नहीं। परंतु खुसरो की असाधारण प्रतिभा की यह विशेषता थी कि उन्होंने सभी छंदों को सफलता के साथ निभाया। गद्य में भी ये अपने युग के शैलीकार माने जाते हैं। 'एजाजे खुसरवी' लिखकर उन्होंने गद्य-लेखन का आदर्श प्रस्तुत किया।

उर्दू पिंगल में 'मस्नवी' एक महत्वपूर्ण छंद है। इसका हर शेर अपने 'काफिये' और 'रदीफ' के लिहाज से जुदा होता है और अशआर (शेर का बहुवचन) की संख्या अमर्यादित होती है। अतः अन्य काव्य प्रकारों की अपेक्षा धारावाही कथाओं के लिए मस्नवी बहुत उपयुक्त छंद है। फारसी शायरी के अनुकरण पर रुबाई की तरह उर्दू में मस्नवी लिखने की परंपरा चल पड़ी।

लोकप्रियता की दृष्टि से गजल के बाद मस्नवी का क्रम आता है। इसमें गजल का भाव-साँदर्य तथा कसीदे की शान भी है। इसमें 'रिद' (मद्यपी) की 'हा व हू' के नारे भी हैं और सूफियों की 'अल्लाहू' की आवाजें भी हैं। हुस्न और इश्क की दास्तानें भी इसमें मिल जाएँगी और युद्ध-भूमि की तलवारों की झंकार भी इसमें स्पष्ट सुनाई देगी। संक्षेप में, मस्नवी में खुद ज़िदगी हँसती, बोलती, गाती, मुस्कराती और कराहती अपने पूरे रख-रखाव के साथ इस प्रकार नजर आएगी जैसे ये सब हमारी तसवीरें हैं जो किसी कला भवन (आर्ट गैलरी) में सजाई गई हैं।

उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि मीलाना 'हाली' का कथन इस संदर्भ में द्रष्टव्य है। वे लिखते हैं, "अत्तरज जितनी सिन्फे (काव्य प्रकार) फारसी और उर्दू शायरी में रुढ़ हैं उनमें कोई सिन्फ मुसलसिल मजामीन के बयान करने के क्राविल, मस्नवी से बेहतर नहीं हैं। यही वह सिन्फ है जिसकी वजह से फारसी की शायरी को अरब की शायरी पर तरजीह दी जा सकती है। अरब की शायरी में मस्नवी का रिवाज न होने या न हो सकने के सबब तारीख (इतिहास) या किस्सा या तसव्वुफ में जाहिरा एक किताब भी ऐसी नहीं लिखी जा सकी जैसी फारसी में सैकड़ों नहीं बल्कि हजारों लिखी गई।" १

प्रोफेसर कलीमुद्दीन के अनुसार "गजल और कसीदे के मुकाबले。(तुलना) में मस्नवी में ज्यादा कसअत (व्यापकता) और विविधता की गुंजाइश है। मस्नवी में 'रजिमया' (वीररस की) शायरी हो सकती है और नए-नए अफसानों की ईजाद (आविष्कार) हो सकती है। दुनिया के गोना-गोन बदलनेवाले

१. मुकद्दमा शेरो शायरी : मीलाना 'हाली'

मंज़र (दृश्यों) की जीती- जागती तसवीरें इसमें खींची जा सकती हैं और ज़िदगी के मुख्तलिफ पहलुओं और सारे नफसी कवायफ का बयान (मानसिक दशाओं का चित्रण) हो सकता है।”^१

खुसरो की मस्नवियाँ

खुसरो ने मस्नवी में फारसी के सुप्रसिद्ध कवि ‘निजामी’ के तज़ के अपनाया है। ‘निजामी’ के ‘पंज गंज’ में तीन प्रकार की मस्नवियाँ हैं—

(१) रजिमया

(२) इशिकया

(३) सूफियाना

खुसरो ने इन तीनों प्रकार की मस्नवियों की रचना की है और खूब की है। कवि की मौलिकता, कल्पना की उदात्तता एवं उक्ति का चमत्कार, किसी भी दृष्टि से खुसरो ‘निजामी’ से किसी प्रकार पीछे नहीं हैं। अब हम खुसरो द्वारा रचित मस्नवियों का संक्षेप में परिचय कर लेंगे :—

१. रिकनुस्सादैना

खुसरो, शाहजादा मुहम्मद सुलतान की शहादत के बाद कुछ दिन पटियाली में रहकर बल्बनी दरबार के एक अमीर हातिम खाँ ‘जहाँ’ की मुलाज़मत (नौकरी) में आ गए, जिसने इन्हें हर तरह से नवाज़ा और शाही लश्कर के साथ अवध जाने लगा तो इनको भी साथ लेता गया।

खुसरो अवध (अयोध्या) में दो साल रहे। लेकिन दिल्ली की याद बराबर सताती रही। जब सुलतान कैकुबाद अवध में अपने बाप से मिला तो खुसरो भी हातिम खाँ के साथ वहाँ मौजूद थे। सुलतान कैकुबाद के देहली वापस जाने के छः महीने बाद हातिम खाँ से अनुमति लेकर खुसरो दिल्ली के लिए रवाना हुए। इनका दिल्ली पहुँचना था कि सुलतान ने इनसे अभिलाषा व्यक्त की कि अवध में खुसरो की उनके पिता से जो मुलाकात हुई थी उसका हाल वे अपनी जादू बयानी से इस प्रकार लिखें कि पितृ-वियोग का दुख दूर हो। खुसरो राजी हो गए। इस समय उनकी उम्र ३६ साल की थी।

खुसरो 'निजामी' गंजवी (ई. स. ११४१) की मस्नवियों को बहुत पसंद करते थे परंतु उनकी शैली का अनुकरण बहुत मुश्किल समझते थे। फिर भी सुल्तान कँकुबाद के आदेश पर उन्होंने ३९४४ अशआर की एक मस्नवी लिखी और 'किरानुस्सादैन' नाम रखकर सुलतान की सेवा में ई. स. १२८९ में प्रस्तुत की। इस विलासिता के रंग में ढूबी हुई मस्नवी में दिल्ली और शाही दरबार से संबंधित तत्कालीन बहुत-सी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक बातें मालूम होती हैं, जिनसे यह एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक संदर्भ-ग्रंथ बन गई है।

देहली की प्रशंसा

दिल्ली की प्रशंसा में लिखते हैं कि दिल्ली की न्याय-कीर्ति दूर तक फैल गई है। यह आदम की जन्मत (स्वर्ग) है। यह अपनी विशेषताओं के कारण 'बागे अरम' (स्वर्ग के बगीचे) की तरह है। इस बोस्ताँ (बाग) का किस्सा सुनकर मक्का भी हिंदोस्ताँ का तवाफ (प्रदक्षिणा) करने लगे—

हज़रते देहली कनफे दीन व बाद
जन्मते अदनस्त आबाद बाद
गर शनूद किस्सा-ए-ई बोस्ताँ
मक्का शबद तायफे हिंदोस्ताँ

(मस्नवी किरानुस्सादैन पृ. २८-२९)

देहली के लोग

दिल्ली के लोगों की प्रशंसा में लिखते हैं कि दिल्ली-निवासी देवदूतों जैसे सुस्वभावी तथा स्वर्ग के वासियों के समान सहृदय तथा अच्छी आदतोंवाले हैं—

मर्दुमे ऊ जुम्ला फरिश्ता सिरश्त
खुश दिल व खुश खूए चूं अहले बिहश्त
हर हमा नज़दीके दिल व गर्म खूं
रपता चूं जाँ दर तने मर्दुम दर्हुं

देहली की आबोहवा

खुसरो को देहली की आब व हवा (जलवाय) बहुत पसंद थी। फरमाते हैं कि इस मुल्क का पानी अगर कोई पी ले तो फिर खुरासाँ का पानी पीना न चाहे—

हर कि दर ई मुल्क दमे आब खुदं
गश्त दिल अज़ आबे खुरासानश सर्द

फूलों की बहार

यहाँ के फूलों की तारीफ में लिखते हैं कि यहाँ फूलों की बहार साल भर रहती है। यहाँ सब तरफ हरा ही हरा नजार आता है—

खित्तए तर सज्जा व सहरा व किश्त
नुस्खा गिरपतः ज सवादे बिहृश्त

देहली के मेवे (फल)

दिल्ली के फलों के बारे में लिखते हैं कि यहाँ हिंदोस्ताँ और खुरासाँ के मेवे (फल) बराबर मिलते हैं। कुछ फल तो ऐसे हैं जिन्हें खुरासाँ में किसी ने चखा न होगा—

मेवा ज़ हिंद व खुरासाँ बसे
ज़ आंचे न खूरदा व खुरासाँ कसे

जश्ने नौ रोज़ (वर्षारंभ के दिन का समारोह)

सुलतान कैकुबाद ने केलुखरी के महल में जिस तरह नौरोज़ का जश्न (उत्सव) मनाया, उसका चित्र अंकित करने में खुसरो ने अपनी कवित्व-शक्ति तथा अपनी कला का कमाल दिखाया है। कहते हैं कि इस अवसर पर शाही महल को हर प्रकार से सुशोभित किया गया था। इसके कंगूरे सजाए गए थे। महलों की महराबों (कमानों) में जरबपत के पद्म लगाए गए थे। दरवार को भली भाँति सँवारा गया था—

कंगूर ए कस्त्र तरफ व तरफ व शरफ
ता व हमल रपता शरफ शरफ
सफए नौ ताक बियारास्तंद
पर्द-ए-जर वपते फलक खास्तंद
चतर ज़ हरसू वफलक अर कशीद
अब्र सजर अज़ शर्म बचादर कशीद

(किरानुस्सादैन पृ. ८३-८४)

इस मस्नवी में खुसरो ने दिल्ली से आत्यंतिक प्रेम होने के कारण इसकी विविध चीजों की इतनी प्रशंसा की है कि उन्होंने इसका नाम 'मस्नवी दर सिफत देहली' भी रखा था परतु यहाँ 'किरानुस्सादैन' नाम से प्रसिद्ध हुई। भावावेश में वे कभी-कभी देहली को 'हजरते देहली' कहकर संबोधित किया करते थे।

२ मस्नवी मपताह अल् फतूह

मस्नवियों में दो मस्नवियाँ खास तौर पर उल्लेखनीय हैं। एक तो वह जिसमें जलालुद्दीन खिलजी की उन लड़ाइयों का वर्णन है जो उसको कड़ा में मलिक छज्जू रालाउद्दीन किश्ली खाँ के विरुद्ध और फिर झाँई (रणथंभोर के निकट) के किले को हस्तगत करने के संदर्भ में लड़नी पड़ीं। यह मस्नवी 'मुफ्ताह अल् फतूह' के नाम से मशहूर हुई। यह एक वीररस-प्रधान रचना है। इसमें देहली शासन के विरोधियों तथा दुश्मनों के लिए कट्ट शब्दों का प्रयोग किया गया है। युद्ध में जो लूट-खसोट तथा रक्तपात हुआ उसका वर्णन रासों की शैली में हुआ है।

झाँई के किले को देखकर खुसरो बहुत प्रभावित हुए। कहते हैं, यह आकाश की तरह बुलंद था। संग खारा से नक्श व निगार का काम किया गया था। यह हिंदुओं का स्वर्ग मालूम होता था। सुप्रसिद्ध पर्शियन चित्रकार मानी के बनाए चित्र भी इसके सामने फीके लगते थे। पत्थर की ऐसी मूर्तियाँ देखने में आईं जो मोम से भी बनाई नहीं जा सकती थीं पर दीवार की गच आईने की तरह साफ़ थी। फरहाद यदि उसे देख लेता तो उसको शीरीं का महल भी तल्ख़ लगता-

मुनक्कश खानइ अज संगे खारा
बहिश्ते हिंदवाँ रा आशकारा
गचे दिवारे उ आइना किरदार
दर्हे अज़ अक्स मर्दुम नक्शे दीवार
गर्हाँ फरहाद रा दर दिल गुजश्ती
दिलशरा कसरे शीरीं तल्ख़ गश्ती
हमा कहगिल ज़ संदल हाये सूदा
हमा चोबश ज़ ऊदे ना बसूदा

(मस्नवी मपताह अल् फतूह, पृ. ३५-३६)

३. मस्नवी दोलरानी खिजर खाँ

यह एक इशिकया (रोमांटिक) मस्नवी है जिसमें अलाउद्दीन खिलजी के बेटे खिजर खाँ और गुजरात के राजा कर्ण की बेटी दोलरानी की प्रेमगाथा अंकित है। कथावस्तु तथा वातावरण दोनों भारतीय हैं। स्वयं खिजरखाँ ने सारी घटनाओं को गद्य में संस्मरण के तौर पर शब्दांकित किया था। उसके आदेश पर खुसरो ने उसे पद्य-बद्ध किया और उसका नाम 'इशिकया' रखा। यह मस्नवी चार महीनों में पूरी हुई।

हिंदी (संस्कृत) भाषा

संस्कृत के विषय में कहते हैं कि यह फारसी से किसी तरह कम नहीं है—

गलत कर्दम गर अज् दानिश जूनी दम
न लफज् हिंदीस्त अज् पारसी कम

हिंदोस्तानी कपड़े

देवगीर नामक कपड़े की प्रशंसा में कहते हैं कि उसकी खूबी यह है कि यह सूख्ज, चाँद अच्छा साथा मालूम होता है—

नकू दानंद खूबाने परी कीश
कि लुत्फे देवगीरी अज् कतॉ बीश
ज् लुत्फे आँ जामा गोई आफताबीस्त
व या खूद साथा या माहताबीस्त

हिंदोस्ताँ की शादी का एक जश्न

इस मस्नवी में सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के लड़के खिजर खाँ की पहली शादी, जो शाही दरबार के एक अमीर अलप खाँ की लड़की से हुई, उसका वर्णन करने में खुसरो की कलम बड़ी उल्लंसित हुई है। इससे इस बात का भी पता चलता है कि उस जमाने में हिंदोस्ताँ में शादी का समारोह किस प्रकार संपन्न होती था—

तीन महीने पहले से इस जश्न की तैयारियाँ शुरू हुईं। महल और शहर की पूरी आरायश की गई। कुब्बे (कलश) बनाए गए, मुरस्सा (जड़ाऊ) पर्दे लटकाए गए, डेरे (तंबू) लगा दिए गए, दरो दीवार पर नवकाशी की गई, रास्तों पर दीवाके फर्श हर तरफ बिछाए गए। इसी के साथ नौवत और शादियाने, दमामे और ढोल बजाए जाते। नट डोरियों पर अपने करतव दिखाते। बहुरूपिये तरह-तरह के स्वांग भरते। कभी वे परी तो कभी देव के रूप में दिखाई देते। संगीत की महफिलें होतीं—

जहे बुस्ताने आँ शह रा जमाले
कि बाशिद चूँ खिजरखानिश निहाले
चूँ इलहामे इलाही शाह रा गुफ्त
कि आँ दुर्रे सआदत रा कुनद जफ्त
इशारत कर्द ता गर्दिशे दहर
बयारानीद यकसर किश्वरो शहर
ब चखें कुब्बए हैराँ कुब्ब-ए-चखें
बर अबर हर दो चूँ बगदाद बा कर्ख
मुरस्सा पद्धंहा चूँ चर्ख ज अंजुम
शुदादेह अंजुम दराँ दुर्रो गुहर गुम
बहर जानिब कि मर्दुम बर जमाँ रफ्त
हमा बर फर्श दीबा हाये चीं रफ्त
(मस्नवी दोलरानी खिजर खाँ, पृ. १५३-१५४)

४. मस्नवी 'नुह सिपहर'

अल्लाउद्दीन खिलजी के बाद कुतुबुद्दीन मुवारक शाह खिलजी ई. स. १३१६ में देहली के तख्त पर बैठा। उसकी आज्ञा का पालन करते हुए खुसरो ने ई. स. १३१८ में मस्नवी 'नुह सिपहर' लिखी। इसमें नौ बाब (अध्याय) हैं। हर बाब अलग अलग छंदों में है। इसी संदर्भ में इसका नाम 'नुह-सिपहर' रखा गया है।

उर्दू के विख्यात आलोचक मौ. शिवली अमीर खुसरो की शायरी के व्यापक प्रभाव के बड़े प्रशंसक थे। उन्होंने अपने एक लेख 'मुसलमानों की इल्मी बेतास्सुबी' में खुसरो के भारत-प्रेम तथा उसकी सहिष्णुता पर भली भाँति प्रकाश डाला है। उन्होंने इस मस्नवी से विभिन्न शीर्षकोंके अन्तर्गत जो उद्वरण प्रस्तुत किए हैं, उनका उद्देश्य यह है कि खुसरो को अपने वतन (भारत) से कितना द्रेम-

था, कितनी मुहब्बत थी। साथ-साथ पाठकों को इस बात का भी पता चले कि वतन के लिए 'कुश्तए मुहब्बत' (वतन पर आशिक होकर) बनकर यहाँ की विभिन्न वस्तुओं की ओर वे किस दृष्टि से देखते थे।

उर्दू के एक अन्य विद्वान् सव्यद सुलेमान नुदवी ने अखिल भारतीय इतिहास परिषद के मद्रास अधिवेशन (१९४४) के अपने अध्यक्षीय भाषण में खुसरो के भारत-प्रेम की चर्चा करते हुए कहा था— “ अमीर खुसरो ने हिंदोस्ताँ की खाक को अपनी आँखों का सुरभा बनाया। गो (यद्यपि) वे नस्ल तुर्क थे मगर उनका दिल हिंदुस्तान की मिट्टी से बना था। अपनी फारसी मस्नवी ‘ नुह सिपहर ’ में एक बाब उन्होंने भारत की विशेषताओं पर लिखा है और यहाँ के निवासियों की विद्या, कला और सहिष्णुता की प्रशंसा में अपनी शायरी का पूरा जौहर दिखाया है। ”

दिल्ली

खुसरो को दिल्ली से पराकोटि का प्रेम है। वे दिल्ली को बगदाद, मिस्र, खुरासाँ, तब्रीज, बुखारा तथा ख्वारिजम पर तरजीह देते हैं और कहते हैं—

फ़्लक गुफ्त हच्चे अज़ ज़मीन किश्वर आमद
अज़ाँ जुम्ला हिंदोस्ताँ बर तर आमद

तीसरे सिपहर में उनका भारत-प्रेम फिर उमड़ आया है जो उनकी अन्य मस्नवियों में दब-सा गया था। हिंदोस्ताँ का राग अलापते हुए भावावेश में आकर कहते हैं—

हिक्मत व दानाई व इल्मो हुनर
व आँचे कि दर हिंद मानीस्त दिगर

(मस्नवी ' नुह सिपहर ' पृ. १४८-१४९)

और फिर फरमाते हैं कि हिंदोस्ताँ से उनको इसलिए प्रेम है कि यह उनकी जन्मभूमि है, उनका प्यारा वतन है क्योंकि रसूल ने फरमाया है कि ' हुस्बुल वतन, मिनल-ईमान ' अर्थात् देश-प्रेम ईमान में दाखल है।

हिंदोस्ताँ भू-स्वर्ग है।

खुसरो के अनुसार हिंदोस्ताँ भू-स्वर्ग है जिसके वे सात कारण बताते हैं—

किश्वरे हिंद अल्ल बहिश्ते बज़मों
हुज्जतश ईनस्त्र बरुखे सफहा बबीं
हुज्जते सावित चू दराँ नीस्त शके
हप्त बिगोयम बदुरस्ती न यके

पहला कारण :

हज्जरत आदम यहाँ जन्मत से आए—

अद्वलश ईनस्त कि आदम ब जिनां
चूं ज असी खुनगई यापत चुनां

दूसरा कारण :

यहाँ मोर जैसा स्वर्ग का पंछी है—

गर न बिहिश्त अस्त हमीं हिंद चिरा
अज़ पिए ताऊस जनो गश्त सरा

तीसरा कारण :

यहाँ साँप भी बागे फ़्लक से आया है

हुज्जतम ईनस्त सुध्यम गर शके
कामदन मार ज बागे फ़्लकी

चौथा कारण :

हज्जरत आदम हिंद से बाहर निकले तो स्वर्ग की विभूतियों से वंचित हो गए—

हुज्जते चहारूम मगर ईनस्त कि चूं
जद कदम आदम ज हदे हिंद बरुँ
नेमते फिर्दोस कि बूदश ब शिकम
अज़ शिकमश गश्त दराँ ताहिया कम

पाँचवाँ कारण :

हिंदोस्ताँ की सरजमीन खुशबू और फूलों से हमेशा गुलजार रहती है—

हिंद हमा साल कि गुलरुये बुवद
जीं बूद ब गुल हमा खुशबू बुवद

छठा कारण :

हिंदोस्ताँ अपनी नेमतों के कारण स्वर्ग से भी बढ़कर है —

बस ब हमा हाल ज खूबी ब बिही
हिंद बिहिस्त अस्त वा सबात रही

सातवाँ कारण :

मुसलमान सारी दुनिया को एक कैदखाना समझते हैं लेकिन हिंदोस्ताँ इनके लिए खुल्दे बरीं (स्वर्ग) हैं :-

गच्छे कि बर निसबते फिर्दोंसे निहाँ
बा हमा लुतफीश चूँ जिदा अस जहाँ
लेक बहिंद अस्त नसीमिश दिगर
कानिश दरूँ मी दहद अज्ज जन्मत असर
जाँ सबबे खास बर असहाबे यकीं
हिंद तवाँ गुफ्त कि खुल्दस्त बरीं

(मस्नवी 'नुह सिपहर ' पृ. १५१-१५७)

इस प्रकार खुसरो ने भारत की महिमा तथा गरिमा का गुणगान किया है। उनको इस बात पर अभिमान है कि भारत उनकी जन्मभूमि है।

खम्स-ए-खुसरो (खुसरो की पंचपदी)

अलाउद्दीन खिलजी हि. स. ६९५ तथा ई. स. १२९६ में तख्त पर बैठा तो खुसरो उसके दरबार से संबद्ध हुए। इस समय उनकी आयु ४४ बरस की थी। उसके पूरे शासन-काल (ई. स. १२९६-१३१६) में ये अपना खम्सा (पंचपदी) लिखते रहे जिसमें निम्नलिखित मस्नवियाँ हैं-

१. मतला-उल-अन्वर

यह मस्नवी 'निजामी' गंजवी की मस्नवी 'मखजनुल इसरार' के अनुकरण पर लिखी गई है। इसमें अधिकांश धार्मिक, नैतिक तथा अध्यात्मिक बातें हैं। इसमें खुसरो ने अपनी लड़की को जो सीख दी है उसको भी इसमें शामिल कर दिया है। इससे पता चलता है कि उस समय एक भारतीय मुसलमान महिला को अच्छी इस्मत (शील) तथा अपने कुल की मर्यादा का कितना ख्याल रखना पड़ता था।

२. शीरीं खुसरो

यह इश्किया मस्नवी 'निजामी' की मस्नवी 'खुसरो शीरीं' के तर्ज पर लिखी गई है जिसमें खुसरो ने 'प्रेम की पीर' को तीव्र तरवना दिया है। इस रोमांटिक अभिव्यक्ति में भावात्मक तन्मयता की प्रधानता है।

३. मजनूँ लैला

यह भी निजामी गंजवी की मस्नवी लैला मजनूँ की शैली पर लिखी गई है। इसमें प्रेम तथा शृंगार की भावनाओं का चित्रण हुआ है। मौलाना शिबली के अनुसार 'इसका हर शेर गोया एक पुरदर्द गजल है।' लेकिन इसमें हिंदोस्ताँ का उल्लेख नहीं हुआ है।

४. आईन-ए-सिकंदरी

यह मस्नवी निजामी के 'सिकंदरीनामा' के जवाब में है। इसकी रचना द्वारा खुसरो यह दिखाना चाहते थे कि वे भी निजामी की तरह वीररस-प्रधान मस्नवी लिख सकते हैं। इसमें सिकंदर आजम तथा खाकाने चीन की लड़ाई का वर्णन है। अतः घटनाओं के विदेशी रंग है। परंतु एक स्थान पर वे अपने छोटे लड़के को जो सीख देते हैं वह आज के युवकों के लिए भी 'मशअले-राह' (मार्गदर्शक) हो सकती है। इसमें रोजी कमाने, हुनर (कला) सीखने, मजहब की पावंदी करने और सच बोलने की वही तरकीब है जो उन्होंने अपने बड़े बेटे को अपनी मस्नवी 'शीरीं खुसरो' में दी है।

५. हश्त बिहश्त

यह मस्नवी 'निजामी' की मस्नवी 'हफ्त पैकर' को सामने रखकर लिखी गई है। मौलाना शिबली के अनुसार इसमें खुसरो की कला चरमोत्कर्ष को पहुँच गई है। घटनाओं के चित्रण की दृष्टि से फारसी की कोई मस्नवी इसका मुकाबला नहीं कर सकती। इसमें ईरान के बहराम गोर और एक चीनी हसीना (सुंदरी) की काल्पनिक प्रेम-गाथा है। कहानी विदेशी है, अतः इसमें भारत से संबंधित बातें

कम हैं। लेकिन इसका वह भाग बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है जिसमें खुसरोने अपनी बेटी को संबोधित कर कुछ उपदेशात्मक वातें लिखी हैं।

आज के संदर्भ में खुसरो की कविता का अनुशीलन भावात्मक एकता के पुरस्कर्ताओं के लिए भी लाभकारी होगा। खुसरो वतन-परस्तों अर्थात् देशप्रेमियों के सरताज कहलाए जाने योग्य हैं। उनका सपूर्ण जीवन देशभक्तों के लिए एक संदेश है। देशवासियों के दिलों को जीतने के लिए जाति, धर्म आदि की एकता की कोई आवश्यकता नहीं। अपितु धार्मिक सहिष्णुता, विचारों की उदारता, मानव मात्र के साथ प्रेम का व्यवहार, सबकी भलाई (कल्याण) की कामना तथा राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता होती है। इस लेख में उद्धृत खुसरो की विभिन्न मस्नवियों के उद्धरणों से यह वात भली भाँति प्रमाणित होती है तथा उनके भारत-विषयक आत्यंतिक प्रेम का परिचय मिलता है।

• • •

अमीर खुसरो और भारतीय संगीत

सथ्यद जहीरुद्दीन मदनी

मत सहल हमें जानो, फिरता है फलक बर
दर द्वारा कौन पढ़े से हमार निकलते हैं ॥

जब हम भारत देश के राजनीतिक उलट-फेर और सामाजिक और सांस्कृतिक विकास और ज्ञान-ध्यान की प्रगति पर सोच-विचार करते हैं तो फौरन हमारा ध्यान पीछे की तरफ जाता है कि वर्तमान के सम्मुख भूतकाल में यह सब क्या होगा और जब अगले जमाने से कड़ियाँ मिलाते हुए आते हैं तो आज के समय में समाज और संस्कृति की जो सूरत देखते हैं उसको ठीक तौर पर समझने में हमसे चूक नहीं होती। इसी प्रकार भारतीय संगीत पर जब गहराई से सोचते हैं तो उसमें कई मिले-जुले रंग दिखाई देते हैं और उनको जब अलग-अलग करते हैं तो हजारों बरस पहले के नहीं तो सैकड़ों बरस पहले के रंग साफ-साफ दीख पड़ते हैं।

संगीत संस्कृति का मुख्य शास्त्र होता है। जिस प्रकार अजंता-एलोरा के मंदिरों की मूर्तियों में उस समय के लोगों की मनोवृत्ति नज़र आती है, उसी प्रकार संगीत में भी लोगों के आचार-विचार, ज्ञान-ध्यान दीख पड़ते हैं। किसी भी संस्कृति को शुद्ध नहीं कह सकते। हर संस्कृति दो-चार संस्कृतियों से मिल-मिलाकर बनती है और लोगों की वृत्ति के अनुसार रिवाज पाती है। भारत में हर युग में मिश्रित संस्कृतियाँ ही चलन पाती रही हैं। पुराने समय में यूनानियों, ईरानियों, मिस्रियों और भारतवासियों में राजनीतिक, सामाजिक और राजा-प्रजा के संबंध रहे हैं। एक-दूसरे को फतह किया, एक-दूसरे के मुल्कों में जाकर बस गए। इस मेल-मिलाप से संस्कृति की हर शाखा में एक सेदूसरा प्रभावित हुआ है। इसी प्रकार संगीत में भी कोई प्रणाली सर्वथा शुद्ध नहीं है। भारतीय संगीत पर अरबी, ईरानी और यूनानी संगीत का प्रभाव पड़ा और भारतीय संगीत-कला से भी उन लोगों और देशों ने बहुत कुछ लिया है।

भारत में हजारों वरस में बहुत कौमें आईं। ये लोग कुछ ले गए और कुछ छोड़कर गए। मगर मुसलमान आए तो ये न लेकर गए न छोड़ गए बल्कि भारत को अपना वतन बनाकर यहाँ बैठे और जो अपने साथ लाए उसको भारत में प्रचलित किया और एक करके रख दिया। इतना ही नहीं बल्कि यहाँ की कला-विद्या को गति दी और नई-नई शकलों दे दीं। खाने में आज हम 'जलेबी' खाकर कभी यह नहीं सोचते कि यह बाहर से मुसलमान लाए हैं। 'जलेबी' या 'जलबी' अरब में 'जलीवह' कहलाती है। पहले वह ईरान आई और ईरान से भारत में आई। मुसलमानों ने भारतीय कला-शास्त्र की बहुत कद्र की और फारसी में अनुवाद कराए और फायदा उठाया। ब्रज की कविता मठों, मंदिरों तक ही सीमित थी। अकबर के समय में बड़े-बड़े कवियों और विद्वानों ने ब्रज को मंदिरों से निकालकर उसमें शृंगार रस भरा और उसका विकास किया। मुसलमानों ने हिंदी और फारसी को मिलाकर एक भाषा प्रचलित की और उसको 'उर्दू' नाम दिया गया। इन सब कामों में हिंदू और मुसलमान दोनों बराबर के हिस्सेदार हैं। इसी प्रकार मुसलमानों ने भारतीय संगीत को भी अपना समझा और उसकी जो सेवा की वह भुला नहीं सकते। इस तरह एक समय में अरबी संगीत की धुनें ईरानी संगीत में मिल-मिलाकर एक हो गई उसी प्रकार मुसलमान जो संगीत अपने साथ भारत में लाए उसको यहाँ उतना हिला-मिला दिया कि अब उसको अलग करना भी कठिन है। यह ऐसा ही है जैसे पंचतंत्र के किस्से-कहानियाँ अरबी में जाकर 'अलिफ लैला' बन गए जो हारून-रशीद के समय के ही किस्से समझ जाते हैं।

भारतीय संगीत हजारों वरस पुराना है। हजारों साल-पहले की किताब 'नाट्यशास्त्र' है। चौथी सदी ईसवी में 'बृहत्-देशी' के नाम से एक

किताब मिलती है। तेरहवीं सदी ईसवी में सारंग देव ने 'रत्नाकर' पुस्तक लिखी। ईसवी सन १३०९-१२ में हरिपाल देव ने 'संगीत-सुधाकर' के नाम से किताब छोड़ी है। हरिपाल देव पहला आदमी है जिसने अपनी किताब में हिंदुस्तानी और कर्नाटकी संगीत ऐसे दो अलग-अलग ढंग बताए हैं। इससे जाहिर होता है कि चौदहवीं सदी से पहले तक एक ही प्रकार का भारतीय संगीत चलने में था। चौदहवीं सदी से दूसरा ढंग भी संगीत में चलने लगा। संगीत के एक जानकार का ख्याल है कि 'रत्नाकर' में जो संगीत है उसको समझना भी कठिन है और आज जो संगीत प्रचलित है उनका 'रत्नाकर' के संगीत से संबंध नहीं है। 'रत्नाकर' में कौन-से संगीत का उल्लेख है इससे हमको वास्ता नहीं है, मगर हम अवश्य कह सकते हैं कि तेरहवीं सदी में जब मुसलमानों ने भारत में हुकूमत की नींव डाली तो बाहर से सैकड़ों कलाकार, विद्वान, सूरमा और रावत भारत में आकर बस गए। ये लोग ईरानी संगीत साथ लाए और उनके साथ भारतीय संगीत में भी बहुत जल्द महारत हासिल कर ली। इस प्रकार पहले यहाँ दोनों देशों के संगीत का चलन रहा। इन्हें बतूता, जो भारत में सन १३२४ ई. स. से १३५१ तक रहा, मुहम्मद तुगलक के समय में दकन गया था। वह लिखता है कि देवगढ़ में संगीतकारों का एक बाजार था। उसमें सैकड़ों औरतें और मर्द कलाकार रहते थे। बाजार के बीच एक 'ब्रिजिहिनी' होती थी। उसमें हर जुमा को उनका चौथरी सबका सलाम लेता था। हिंदू, मुसलमान, बादशाह, रईस सभी उस 'ब्रिजि' में बैठकर गाना सुनते थे। सन १४४१ में तैमूरलंग के बेटे शाहरुख के एलची (दूत) मौलाना कमालुद्दीन विजयनगर (दकन) आए थे। उन्होंने भी लिखा है कि विजयनगर में हजारों कलाकार मौजूद थे। उन संगीतकारों में हिंदू भी होंगे और मुसलमान भी होंगे।

मुसलमानों ने संगीत-कला के विकास में और कलाकारों का सम्मान करने में कसर नहीं रखी थी। अल्तमश के बेटे फीरोजशाह के दरबार में सैकड़ों गवध्ये थे। कैकबाद (१२०६) का दरबार भी कलाकारों से भरा हुआ था। जलालुद्दीन खिलजी और अलाउद्दीन खिलजी के दरबार भी संगीतकारों से भरे हुए थे। गुजरात का सुलतान बहादुरशाह, जैनपुर के हुसैन शरकी, अकबर महाबली, मुहम्मदशाह रंगीले, आसफुद्दोला लखलट, वाजिदअली आलम-पिया और उनके समय के रईसों ने संगीत की महान सेवाएँ की हैं। ये लोग खुद इस कला में महारत रखते थे।

हम नहीं कह सकते कि आरंभ में मुसलमान कलाकारों ने किस प्रकार ईरानी और भारतीय संगीत को मिश्रित किया, मगर यह अनुमान है कि जिस प्रकार आज फिल्मी धुनों को दुनियाभर के संगीत की धुनों से मिश्रित किया जाता

है उसी प्रकार कुछ-कुछ उन लोगों ने प्रयत्न किया होगा जो अच्छा सावित न हुआ होगा । मगर सन १२५१ ई. में भारत में एक सपूत्र अमीर खुसरो पैदा हुआ जिसने भारतीय संगीत की अमूल्य सेवाएँ कीं । उससे एक नया ढंग प्रचलित हो गया । उसी को 'हिंदुस्तानी संगीत' के नाम से याद किया जाता है ।

अमीर खुसरो के पिता अमीर सैफुद्दीन सुलतान अल्तमश के समय में मध्य-एशिया से हिंदुस्तान आए और जिला पटना में पटियाली मकाम पर डेरे-तंबू डाले और उसको अपना बतन बना लिया । अमीर सैफुद्दीन अपनी लियाकत के कारण बहुत जल्द सुलतान के खास सलाहकारों में जगह पा गए । अमीर सैफुद्दीन ने देहली के एक रईस नवाब व इमाद-उल-मुल्क की बेटी से शादी की थी । उनसे तीन बेटे पैदा हुए थे । उनमें मैंबले बेटे अब्दुल-हसन यमीनुद्दीन थे । यही अमीर खुसरो के नाम से मशहूर हुए । अमीर खुसरो सन १२२३ ई. में पटियाली में पैदा हुए । खुसरो की उम्र नौ साल की थी जब पिता सैफुद्दीन किसी जंग में काम आ गए । उसके बाद खुसरो की देखभाल उनके नाना-उल-इमाद-मुल्क ने की इसी समय खुसरो हज़रत निजामुद्दीन से भी मिले थे । खुसरो ने वाईस साल की । उम्र में तमाम प्रचलित विद्याओं और कलाओं में महारत हासिल कर ली थी । उनको बड़े कवियों, विद्वानों और सूफी-संतों से भिलने और उनसे प्रभावित होने का बहुत अवसर मिला था । खुसरो को अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत और भारत की दूसरी भाषाओं में बड़ी महारत हासिल थी । कविता तो वह दस बरस की उम्र से करने लगे थे ।

खुसरो ने ग्यारह सुलतानों के दरबारों में ऊँचा पद प्राप्त किया था । पहला दरबार गयासुद्दीन बलबन के बेटे का था और आखरी गयासुद्दीन तगलक का दरबार था जिससे ये संबंधित थे । साठ साल की उम्र से खुसरो हज़रत निजामुद्दीन से ज्यादा प्रभावित हुए और तसव्वुफ से उनकी लगन बढ़ती गई । खुसरो गयासुद्दीन के साथ दिल्ली से बाहर थे कि हज़रत निजामुद्दीन बीमार पड़े और सन १३२४ में इस दौरे फानी से चल बसे । खुसरो दिल्ली आए तो उनको पता चला । ये रोते पीटते निजामुद्दीन की कब्र पर गए । खूब रोए और यह दोहा पढ़ा-

गोरी सोबे सेज पर मुख पर डारे केस ।
चल खुसरो घर आपने रैन भई चौदेस

उसके बाद खुसरो ने घर-बार छोड़ दिया और हज़रत निजामुद्दीन की खीनिकाह में बैठ गए । उसके छः महीने बाद खुसरो भी अपने मुर्शिद से जा मिले ।

खुसरो ईरानी और भारतीय संगीत के दोनों ढंगों में वड़ी महारत रखते थे। मशहूर है कि विजयनगर का नायक गोपाल उस समय संगीत में सबसे ऊँचा दर्जा रखता था। उसके साथ हमेशा सैकड़ों शागिर्द रहते थे और उसकी पालकी या तख्त उठाकर चलते थे। उसको अल्लाउद्दीन के दरवार में बुलाया गया था। पहले कई दिन तक खुसरो उसका संगीत छिपकर सुनते रहे और एक दिन सामने आए। गोपाल खुसरो का नाम सुन चुका था। उसने खुसरो से गाने के लिए कहा। खुसरो ने कहा, “पहले तुम सुनाओ।” अब गोपाल जो सुनाता उसको अच्छे और अनोखे ढंग से अमीर खुसरो सुना देते। इससे नायक गोपाल खुसरो को उस्ताद मान गया।

इससे पहले कि खुमरो के आविष्कारों को पेश किया जाए यह देख लीजिए कि खुसरो को आवाजों और सुरों पर कितना कावू था। वह जिस आवाज को चाहते उसे शब्दों में वर्णन लेते। उसका एक मात्र उदाहरण देखिए। खुसरो ने धुनिये की धुनकने की तमाम आवाजों को फारसी शब्दों में वर्णिया हैं मगर फारसी न जाननेवाला भी सुनकर यही कहेगा कि धुनिये की धुनक से ऐसी आवाज निकलती है। उदाहरणार्थ “दर पये जानाँ जाँ हम रफत-जाँ हम रफत-जाँ हम रफत रफत रफत-जाँ हम रफत-ई हम रफत व आँ हम रफत-आँ हम रफत-ई हम, आँ हम, ई हम रफत रफतन रफत देह देह रफतन देह रफ रफ, रफतन देह, रफतन देह।”

खुसरो ने तीन प्रकार से भारतीय संगीत को मालामाल किया है। खुसरो ईरानी संगोत में महारत रखते थे, इसलिए उन्होंने ईरानी संगीत के कुछ रागों, धुनों को भारतीय संगीत से मेल खाता हुआ देखकर उन्हें भारतीय संगीत में प्रचलित किया। ऐसे बहुत-से राग होंगे मगर हमारे सामने ये तीन नाम ऐसे मिलते हैं जो बाहर के हैं। मगर उनके नाम हिंदी तरकीब पर बोले जाते हैं।—‘नौ-रोज़’ ‘हिजाज़’, ‘ज़िगोला’ ईरानी संगीत से सम्बद्ध रखते हैं जो भारतीय संगीत में ‘नुवर-चंगा’ ‘हजीज़’ और ‘जंगला’ नाम से मशहूर हैं।’

खुसरो ने दूसरा तरीका यह इक्षितवार किया कि ईरानी रागों और धुनों को हिंदी रागों के साथ मिश्रित करके नए-नए राग बनाए। इन रागों में चंद एक ये मिलते हैं—‘मुन्अम’—राग कल्याण में एक फारसी राग मिलाकर ‘मुन्अम’ राग बनाया गया है। ‘मुजीर’—गारा और एक फारसी राग मिलाकर ‘मुजीर’ बनाया गया है। ‘उश्शाक’ सारंग, वसंत और एक फारसी राग मिलाकर ‘उश्शाक’ बनाया गया है। ‘साज़गिरी’—पूरबी गौरा, गुणकली और एक फारसी राग से मिश्रित किया गया है। ‘ज़ील्फ’—खट राग में फारसी राग ‘शहनाज’ को मिलाया गया है। ‘मुकाफिक’—तोड़ी मालसरी और फारसी ‘दो-गाह हुसैनी’ को मिश्रित

किया गया है। 'फरगाना'-सोलह हिंदी रागों में एक फारसी राग मिलाया गया है या गुणकली और गौरा में फारसी राग फरगाना मिलाया गया है। 'सर-पर्दाह'-गौड़-सारंग और बिलावल में फारसी राग या धुन 'रास्त' को मिलाया गया है। 'गनम'-पूरबी में परिवर्तन किया गया है। 'ऐमन'-हिडोल में फारसी राग 'नौ-रीज' मिलाया गया है। 'बाखर्ज'-दीकार' में एक फारसी राग मिलाया गया है। 'फरो-दस्त'-कानडा, गौरी, पूरबी के साथ एक फारसी राग मिलाया गया है। 'गजल'-पूरबी, विभास, गौरा और गुणकली को मिश्रित करके बनाया गया है। फकीरल्लाह के 'राग-दर्पण' में इन सबका जिक्र मिलता है।^१ इनके अलावा खुसरो ने हिंदी के पुराने रागों में थोड़ा-थोड़ा भेदांतर करके नए-नए राग और नई नई धुनें बनाई, जैसे 'गौड़-मल्हार' से एक प्रकार का नया-कानडा बनाया और उसका नाम 'बागेश्वी-कव्वाली' रख दिया। सारंग के मेल से कानडा-शाहना का आविष्कार किया। इसी प्रकार नए-नए राग और धुनें जैसे सोहनी-कव्वाली, पूरिया-ललत, रामकली-कव्वाली, टोडी-बरारी, टोडी-असावरी, पूरबी, प्रदोपकी, बहार कव्वाली, बसंत कव्वाली आदि हैं जिनके नाम भारतीय संगीत में मिलते हैं।

खुसरो ने भारतीय संगीत में ईरानी रागों को प्रचलित करके और हिंदी-ईरानी रागों को मिश्रित करके भारतीय संगीत में बहुत अनमोल वृद्धि की और उसके साथ-साथ नए-नए ढंग और धुनें भी निकालीं। इन ढंगों में ख्याल, कौल, तराना, कल्पना, शाहना, सहेला, नक्श, गुल, मशहूर हैं।

'ख्याल' संगीत में एक अनोखा ढंग है। खुसरो से पहले भारतीय संगीत में ध्रुपद ढंग रिवाज था और यह अकबर-शाहजहाँ से लेकर मुहम्मद शाह के समय तक बहुत प्रचलित था। ध्रुपद में सुर महत्वपूर्ण समझा जाता है। सुर की सच्चाई पर उसका अच्छा और बुराहोना निर्भर है और उसमें जो कविता है वह देवताओं की स्तुति है या भारतीय तत्त्वज्ञान का एक रूप है। खुसरो खुद ध्रुपद के बड़े जानकार थे। मगर उन्होंने बाहर से आनेवालों की पसंद और नापसद को देखकर ध्रुपद में से एक नया ढंग निकाला और उसको 'ख्याल' नाम दिया। ख्याल का अर्थ कल्पना है और उसकी कविता में यही कल्पना पाई जाती है। ध्रुपद की अपेक्षा उसमें तान-पलटे हैं। उनसे संगीत में सुंदरता पैदा की जाती है। यह तर्ज खुसरो ने निकाला मगर उसके दो-सौ वरस बाद जौनपुर के सुल्तान हुसेन शरकी ने उसके विकास में बड़ा हिस्सा लिया और बाद में मुहम्मदशाह रंगीले के जमाने में सदारंग और अदारंग ने उसको आगे बढ़ाया। यह इतना पसंद किया गया कि उस समय से 'ध्रुपद' का पतन शुरू हुआ।

‘कौल’ लफज़ कव्वाली बना है। इसमें पैगम्बरे-इस्लाम का कोई ‘कौल’ होता है। उसको ‘तराना’ की प्रक्रिया से बोल बढ़ाकर गीत को पूरा किया जाता है। यह इसलिए कि राग रागिनी की सूरत यानी ‘उच्चारण’ सामने आ जाए और राग बिगड़ने न पाए। इसकी मिसाल देखिए। एक कौल जो हज़रत मुहम्मद ने कहा था कि—“मिन कुनतो मौलाह, फेअली मौलाहे”। इसका अर्थ है—“जिसका मैं मौला (दोस्त) हूँ उसका अली मौला (दोस्त) है।” इस हुदीस को खुसरो ने इस तरह वाँधा है—

“मन् कुनतो मौलाह-फे अली मौलाह-दिर तुम ता ना ना ना ना ना ना ना ले आलाली आलाली अल्-लिल्लाह या लललै-अलाली अलाली या लललै पन् कुनतो मौलाह फेअली मौलाह।”

उस समय ‘कव्वाली’ की यह सूरत थी। उसको कव्वाल गाए तो सूफियों को सुनकर हाल आता था। खुसरो खुद हज़रत निज़ामुदीन के दरबार में इस सेवा का पालन करते थे। खुसरो ने ऐसी बहुत-सी कव्वालियाँ अलग-अलग रागों में बिठलाई हैं जैसे ‘बहार-कव्वाली’, ‘बागेश्वी-कव्वाली’, ‘सोहिनी कव्वाली’, ‘रामकली-कव्वाली’, ‘वसंत-कव्वाली’ आदि। ‘कव्वाली’ या ‘कौल’ टोली का गाना है। चार-पाँच आदमी मिलकर गाते हैं। पहले क्या गाया जाता था नहीं मालूम। मगर अब इसका रंग-डंग बदल गया है। पहले यह सिर्फ़ सूफियों की महफिलों में गाई जाती थी। इसके गानेवाले भी खास होते थे। इसके लिए तीनशतें थीं—यानी ‘मकान’, ‘जमान,’ और ‘अखवान’। ‘मकान’ से मुराद यह है कि कव्वाली की मजलिस ऐसी जगह हो जहाँ सूफियों और अल्लाहवालों के सिवा दूसरा कोई न हो और आम जनता से दूर हो। ‘जमान’ यानी समय ऐसा हो कि उस समय दूसरा कोई काम न हो और नमाज़ का वक्त न हो। ‘अखवान’ से मुराद यह है कि सुननेवाले सूफी हों। यह ऐसा गाना और ढंग है कि आत्मा को ऊँचा ले जाता है, भगवान का ध्यान दिलाता है और आत्मा को सच्ची खुशी होती है। मगर अब तो कव्वाली में गज़लें और गीत और वे भी नीचे दर्जे के गाते हैं जिससे वुरे और बीभत्स और पैशाचिक विचार मन में आते हैं। अब की कव्वाली का पहले की कव्वाली से कोई संबंध नहीं होता है।

तराना में खुसरो ने कई चीजें यादगार छोड़ी हैं। ‘तराना’ में भी किसी ‘कौल’ या ‘फिकरे’ के साथ ‘तानूम’ याने ‘देरे ता ना दे रे तानूम’ मिलाकर राग का ‘उच्चारण’ और ‘सूरत’ जाहिर करते हैं। यह ‘द्रुत’ ल्रय में गाया जाती है। खुसरो का एक तराना है—

“ दर आ, दर आ, दर तनम, दर आ जाने मन, दर आ, दर आ ।
 ब-तंग आमदे ता चंद इन्तजार कशम ।
 बिया बिया के तुरा तंग दर किनार कशम ॥ ”

(आ, आ मेरी जान और मेरे तन-मन में समा जा ! मैं अब तंग आ चूका हूँ, कब तक तेरा इंतजार करूँ ? आ जल्द आ, ताकि मैं तुने अपनी वाहों में जबड़ लूँ ।)

‘किल्वाना’ में अरवी या फरसी-हिंदी के शब्द और विचार मिला गए होते हैं । इसका उदाहरण यह है—

अस्थायी— ‘ लवाद सदकुल्लाह तआला भैजो दरुद और सनाम । ’

अंतरा— अमीर खुसरो बल-बल जावे, हजरत निजामुदीन के दरवार गावे ।

किल्वाना नक्ष में केवल एक रुबाई (छंद) होता है और ‘ गुल ’ में केवल ‘ शेर ’ की एक कड़ी होती है । ‘ सोहला ’—शादी व्याह के गाने और उनके मुनासिब धुनें होती हैं । ‘ सोहले ’ आज भी गाए जाते हैं । ‘ नक्ष-गुल आदि तो नहीं सुने गए ।

खुसरो ने भारतीय संगीत में जो परिवर्तन किया उसके बारे में ऊपर देख आए कि उन्होंने इन रागों और धुनों को मिश्रित करके गाने के ढंग से प्रस्तुत किया । मगर उन्होंने इन रागों और धुनों के लिए बोल-बाट, गीत आदि भी लिखे क्योंकि ‘ बोल-बाट ’ के बगैर खुसरो का भगवान की स्तुति और प्रशंसा का विचार पूरा नहीं होता । इसलिए यह मानना पड़ता है कि खुसरोने ‘ ब्रिज ’ में हजारों बोल-बाट और गीत लिखे जिनको कविता ही कहा जाएगा । अगर्ह हमारे सामने आज इस प्रकार की कविता और गीत ही हैं फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता । खुसरो ने अपनी फारसी कविता की पुस्तक में दावा किया है कि उन्होंने तीन भाषाओं में कविता कही है । वे फारसी, तुर्की और हिंदी हैं । इसमें जिसको ‘ हिंदी ’ कहा है वहाँ ‘ ब्रजभाषा ’ में संगीत की कविता की ओर इशारा समझना चाहिए ।

संगीत में लय और ताल बहुत ही महत्व रखता है । हर मुल्क के गाने में इसको बहुत ही महत्वपूर्ण समझा जाता है । भारत में पखावज से यह काम लिया जाता है । भारत का सबसे पुराना ‘ बाज ’ पखावज है । यह ध्रुपद गायन के साथ अ. खु....६....

का 'बाज' है। खुसरो ने जब ख्याल का आविष्कार किया और उसके साथ दूसरे ढंग भी पेंदा किए तो उन्हीं को मलता और 'धीमेपन' के लिए पखावज बेजोड़ साज साबित हुआ। इसलिए खुसरो ने संगीत के बास्ते 'तबला' ईजाद किया। उसको बजाने के तरीके भी बताए। खुसरो ने रागों और धुनों को देखते हुए 'सतरा ताने' नई तरकीब की बनाई। वे तालें ये हैं— १. पश्त, २. जू-बहर, ३. कब्बाली, ४. फाँड़तः, ५. जन (गत तीन ताल), ६. जला-तिताला, ७. सवारी, ८. आड़ा-चौताला, ९. झमरा, १०. झपताल, ११. खमा, १२. फरो-दस्त, १३. पहलवान, १४. कैद, १५. दास्तान, १६. पट-ताल, १७. चपक। ताल, 'दास्तान' नवकारा बजाने के लिए है। आज भी दो-चार के सिवा तमाम ताल उस्ताद काम में लेते हैं। इसी प्रकार 'ढोलक' भी खुसरो की 'ईजाद' है। यह औरतों के गीत ही में नहीं बल्कि कब्बाली में तो इसका प्रधान पद है। इसीकी थाप-चाट से बोल चमकते हैं।

'सितार' भी खुसरो की ईजाद बताई जाती है। भारत और दूसरे भूकों में तार के साज पहले में मौजूद है। भारत में 'वीन' (वीणा) पुराना और मुरीला बाज मौजूद है। यूरोप का 'गिटार' और मिस्र का 'मुथारा' सब तार के ही बाज हैं। जिस प्रकार खुसरो ने धूपद से 'ख्याल' निकाला उसी तरह 'निनार' जिसकी कोई शब्द पहले से प्रचलित थी, उसमें तार बढ़ाकर सितार बना लिया। इससे फायदा यह हुआ कि जो गग और धने दूसरे बाज पर अदा नहीं हो सकते थे अब इसपर अच्छी तरह अदा होने लगे। यह बड़ा मस्त कर देनेवाला बाज है। इसको अभीर बजाता है या फिर फकीर !

खुसरो ने संगीत में जो आविष्कार किए और जो नवीनता लाए वह उस युग के लोगों की विचारधारा के अनुसार था। इसी कारण खुसरो के काम को गति भी मिली और प्रगति भी हुई। इस प्रकार भारतीय संगीत में एक नया प्रयोग आ गया और भारतीय संगीत में इसके बाद संगीत के दो ढंग मशहूर हो गए— एक कर्नाटकी और दूसरा हिंदोस्तानी या उत्तरी संगीत ! खुसरो का सन् १३२४ ई. में देहांत हुआ। उसके बारह-पंद्रह वरस बाद हरिपाल देव ने अपनी पुस्तक 'संगीत-सुव्राकर' में हिंदोस्तानी संगीत और कर्नाटकी संगीत दो अलग नाम दिए। इनसे दीख पड़ता है कि खुसरो ने संगीत के जिस ढंग को प्रचलित किया वह पसंद किया गया और चल पड़ा। खुसरो का यह काम इसी जगह रुक नहीं जाता। इसको आगे बढ़ानेवाले लोगों में बादशाह भी हैं और फकीर भी हैं, हिंदू भी हैं और मुसलमान भी हैं। बादशाहों में जौनपुर के हुसेन शर्की, मुहम्मद शाह रंगीले, अवध का नवाब, वजीर खानदान में खास तौर पर वाज्हिद अली शाह

और रियासतों में तो नेपाल से लेकर मैसूर तक, रोहतक से लेकर कटक तक सभी नरेश अभिभावक थे। ये बादशाह और नरेश खुद भी बड़े संगीतकार गुजरे हैं। अकबर और शाहजहाँ के दरबारों में 'ध्रुपद' ही का बोलबाल था। हरिदास, सूरदास तो शास्त्रीय संगीत के चाहनेवाले थे मगर मुसलमान सूफियों में खुसरो के बाद हजरत बहाउद्दीन बरनावनी, हजरत बहाउद्दीन जकरिया मुल्तानी, हजरत बहाउद्दीन बाजन आदि वे सूफी थे जिन्होंने कई-कई राग और धुनें बनाईं जो संगीत में अनमोल इजाफा हैं।

जब हम मुमलमानों के भारत में आने के बाद इसको अपना वतन बना लेने और इस देश की विद्याओं की उन्नति में हाथ बैठाने और उनमें अमूल्य वृद्धि करने पर सोच-विचार करते हैं तो मालूम होता है कि इनके प्रयत्नों के फलस्वरूप विद्या, साहित्य और कलाओं में वृद्धि अवश्य हुई मगर इससे बड़ा अमूल्य पाठ तो एकता का मिलता है। उन मूर्खी सतोंने एकता बढ़ाने के लिए विद्या, साहित्य कला-सबको काम में लिया और एकता कायम की।

अमीर खुसरो उन्हीं बड़े लोगों में से एक थे जिन्होंने संगीत के जरिए एकता कायम की। हम खुसरो के बारे में बहुत कम जानते हैं क्योंकि इसपर सशोधन करने का किसी ने इरादा नहीं किया और न जनने का। दूसरा कारण यह भी है कि यह कला उस्ताद ने शागिर्द के दिल में डाल दी। इसीको खुसरो ने इस प्रकार बयान किया है। वह कहते हैं, "संगीत वह विद्या है जो मन में जाती है, यह शब्दों में लिखी नहीं जाती। अगर जो ऐसा होता तो कई दफ्तर लिख डालता ! "

अमीर खुसरो की हिंदी

डॉ राजनारायण मौर्य



अमीर खुसरो मुश्यतः फारसी के कवि थे किंतु उन्होंने अरबी और तुर्की में भी कुछ रचनाएँ की हैं। इसके अलावा कुछ रचनाएँ हिंदी में भी हैं। खुसरो फारसी के बहुत ही श्रेष्ठ कवि थे। वे फारस के अत्यंत प्रसिद्ध कवि फिरदौसी, शेख सादिक और निजामी की श्रेणी में गिने जाते थे। हिंदुस्तान के तो वे एकमात्र फारसी के श्रेष्ठ कवि थे। इसीलिए उनको 'हिन्द की तूती' कहा जाता था। सहज ही यह प्रश्न उठता है कि फारसी के इतने श्रेष्ठ और प्रसिद्ध कवि होने पर भी उन्होंने हिंदी में क्यों लिखा? इस प्रश्न का उत्तर उन्होंने स्वयं दिया है। वे लिखते हैं, "मैं भूल में था पर अच्छी तरह सोचने पर हिंदी भाषा फारसी से कम नहीं ज्ञात हुई। सिवाय अरबी के जो प्रत्येक भाषा की मीर और सबों में मरुय है, उर्दू

और रूम की प्रचलित भाषाएँ समझने पर हिंदी से कम मालूम हुईं। अरबी अपनी चोली में दूसरी भाषा को नहीं मिलने देती पर फारसी में यह कमी है कि वह बिना मेल के काम में आने योग्य नहीं है।... हिंदी भाषा भी अरबी के समान है क्योंकि उसमें भी मिलावट का स्थान नहीं है।”^१

इसके अतिरिक्त उन्होंने हिंदी भाषा के व्याकरण और उसकी अर्थ-समृद्धि पर भी लिखा है जो इस प्रकार है—

“ यदि अरबी का व्याकरण नियमबद्ध है तो हिंदी में भी उससे एक अक्षर (कम ?) नहीं है। जो इन तीनों भाषाओं का ज्ञान रखता है वह जानता है कि मैं भूल कर रहा हूँ। और यदि पूछो कि उसमें अर्थ न होगा तो समझ लो कि उसमें दूसरों से कम नहीं है। यदि मैं सच्चाई और न्याय के साथ हिंदी की प्रशंसा करूँ तब तुम शका करोगे या नहीं ? ठीक है कि मैं इतना कम जानता हूँ कि वह नदी की एक वूँद के समान है। ”^२

खुसरो के इन कथनों से यह प्रमाणित होता है कि हिंदी उस समय भारत की एक बहुप्रचलित एवं समृद्ध भाषा थी जिसे उन्होंने फारसी से कम नहीं समझा और अपने देश की इस भाषा में लिखना उन्होंने आवश्यक समझा। ऊपर के उदाहरणों से हिंदी भाषा के संबंध में निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं—

- १) हिंदी भाषा फारसी से किसी प्रकार कम नहीं। लेकिन अरबी से कम है।
- २) हिंदी भाषा में किसी भाषा की मिलावट नहीं है।
- ३) हिंदी भाषा का व्याकरण (अरबी की तरह) नियमबद्ध है।
- ४) हिंदी भाषा में (अरबी-फारसी की तुलना में) अर्थ की कमी नहीं अर्थात् अर्थ की दृष्टि से पूर्ण समृद्ध है।
- ५) स्वयं खुसरो हिंदी भाषा बहुत कम जानते थे।

ध्यान देने की बात है कि खुसरो जिस हिंदी भाषा की बात कर रहे हैं वह तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और चौदहवीं शताब्दी के प्रारंभ (१२५४-१३२५) की है। खुसरो ने उसी भाषा में अपनी रचनाएँ कीं।

इन रचनाओं की भाषा स्पष्ट रूप से खड़ी बोली है, यद्यपि इस भाषा-रूप का नाम खुसरो के समय हिंदी या हिंदवी था। खड़ी बोली नाम तो सन् १८०३ में पड़ा। और इस कारण इस भाषा-रूप के संबंध में लोगों में अनेक भ्रांत धारणाएँ हैं। कुछ लोग खड़ी बोली के अस्तित्व को १८०३ के पूर्व स्वीकार ही नहीं करते, कुछ लोग इसकी उत्पत्ति उर्दू से मानते हैं और कुछ लोग इस भाषा का उद्भव ब्रज से मानते हैं। वस्तुतः यह भाषा-रूप (खड़ी बोली) उतना ही पुराना है जितना ब्रज और अवधी। भारतीय भाषा-विकास की स्थिति को जानने-वाले इस बात से अपरिचित नहीं हैं कि मध्यकालीन आर्य भाषाओं के पश्चात् जिन नव्य भारतीय आर्य भाषाओं का विकास हुआ उनमें मध्यप्रदेश में चार भाषाएँ प्रमुख थीं—ब्रज, अवधी, राजस्थानी और खड़ी बोली। इनमें से पहले की तीनों स्थानीय भाषाएँ थीं। ब्रज मध्यप्रदेश के पश्चिम में, अवधी पूर्व और उत्तर में और राजस्थानी दक्षिण में विकसित हुई। किंतु पूरे मध्यप्रदेश में अन्तप्रान्तीय माध्यम के रूप में खड़ी बोली विकसित हुई। पुराणोत्तमदास टंडन ने यह कहा भी है कि ब्रज, अवधी, खड़ी बोली और राजस्थानी का विकास अपभ्रंश भाषाओं से अपने-अपने क्षेत्र में अलग-अलग हुआ है। (हिंदी सा. सम्मे २३ वाँ अधिवेशन।) जिस प्रकार ब्रज, अवधी और राजस्थानी अपभ्रंश से विकसित हुई हैं उसी प्रकार खड़ी बोली भी, किंतु इसे धीरे-धीरे अन्तप्रान्तीय या मध्यप्रदेश की बहुप्रचलित भाषा का स्थान प्राप्त हो गया। अमीर खुसरो ने हिंदी भाषा के नाम से इसी भाषा-रूप की चर्चा की है।

खुसरो के समय जो हिंदी (खड़ी बोली) थी वह मध्यप्रदेश और दिल्ली आगरे के आसपास बहुत प्रचलित थी। यही नहीं बल्कि मध्यप्रदेश के बाहर इसे अन्तप्रान्तीय माध्यम का रूप प्राप्त था। इसीलिए जब अन्य भाषा-भाषी भारत की बहुप्रचलित भाषा में कुछ लिखना या कहना चाहता तो वह खड़ी बोली में ही कहता। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त नामदेव (१२७०-१३५०) खुसरो के ममतालीन थे। चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जब वे पंजाब में जाकर रहने लगे और वहाँ की बहुप्रचलित भाषा में काव्य-रचना करनी चाही तो उन्होंने इसी भाषा-रूप (खड़ीबोली) को अपनाया। बाद में काशी के होते हुए भी कबीर ने जन-भाषा खड़ी बोली में ही अपनी बात कही। यह भाषा-रूप ब्रज अवधी से भिन्न था, यद्यपि इनमें कुछ समानताएँ भी थी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसी भाषा-रूप-को सधुकड़ी भाषा कहा है। साधु-संत भारतभर में घूमते रहते थे और वे उसी भाषा का प्रयोग करते थे जो सबसे अधिक प्रचलित थी। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि चौदहवीं शताब्दी में खड़ी बोली भारत में प्रमुख रूप से मध्यप्रदेश

में अत्यधिक प्रचलित भाषा थी और खुसरो ने इसी भाषा में अपनी कविता लिखी।

तेरहवीं शताब्दी तक खड़ी बोली में विदेशी भाषाओं के शब्द नहीं थे। यह पूर्ण रूप से विशुद्ध थी। भले ही विदेशी शासक तेरहवीं शताब्दी से पूर्व भारत में आ चुके थे किंतु उनके शब्द भारत की भाषा में प्रयुक्त नहीं होते थे। नव्य भारतीय आर्य भाषाओं की शब्दावली आर्य भाषा से विकसित हुई थी जो प्राकृत और अपभ्रंश के माध्यम से इसमें आई थी। लेकिन तेरहवीं शताब्दी के बाद इन भाषाओं में विदेशी शब्दोंका प्रयोग होने लगा। स्वयं खुसरो ने भी अपनी हिंदी रचनाओं में फारसी और अरबी शब्दों का प्रयोग किया है। लगभग समकालीन कवि नामदेव की हिंदी में भी फारसी के शब्द प्रयुक्त हुए हैं। लगता है, खुसरो ने खड़ी बोली की प्रकृति को देखते हुए यह कहा था कि हिंदी भाषा में (अरबी के समान) मिलावट का स्थान नहीं है। हिंदी में जो भी अरबी-फारसी शब्द मिलते हैं वे ऊपर से ही विदेशी लगते हैं। तत्कालीन हिंदी भाषा के प्रवाह में विदेशी शब्दों का बूल-मिल जाना सम्भव नहीं था। कुछ भी हो किंतु इतना तो निश्चित ही है कि खुसरो-कालीन हिंदी भाषा में विदेशी शब्द नहीं के बराबर थे और थे तो वे अपना विदेशीपन बनाए हुए थे।

ब्रज और अवधी की तरह अपभ्रंश से ही खड़ी बोली का स्वतंत्र विकास हुआ। अपभ्रंश में ही खड़ी बोली के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। मोटे तीर पर खड़ी बोली का एक प्रधान लक्षण शब्दों का “आ”कारांत होना है। ब्रजभाषा प्रायः ओकारांत है, अवधी अकारांत और खड़ी बोली आकारांत। आकारांत की यह प्रवृत्ति अपभ्रंशों में स्पष्ट दिखाई देती है। जैसे—

“ नव जल भरिया मगडा गयगि धडककइ मेहु ।

महिवीढह सचराचरहं जिण सिर दीन्हा पाय । ”

—वुद्ध चरित, रामचंद्र शुक्ल ॥

आगे चलकर संक्रांतिकालीन अपभ्रंश और अवहट्ट के ‘सन्देश रासक’ ‘प्राकृत पैगलम्’, ‘उक्ति व्यक्ति प्रकरण’, ‘वर्णरत्नाकर’ आदि कृतियों में आकारांत की प्रवृत्ति सुरक्षित है। उदाहरणार्थ—

“ हत्थी जूहा सज्जा हूआ ” ।

“ पञोहर मुहट्ठिआ तहआ हत्थ एक्को दिआ ।

पुणे वि तहं संठिआ तहं अ गंध सज्जा किअ ॥ ”

--प्राकृत पैगलम्

‘ सज्जा हूआ, दिआ, संठिआ, सज्जा किआ आदि प्रयोग स्पष्ट रूप से खड़ी बोली के रूप हैं। आगे हेमचंद्र के प्रसिद्ध ‘ दोहाकोश ’ में भी खड़ी बोली के प्रारंभिक रूप देखे जा सकते हैं। यथा—

“ भल्ला हुआ जु मारिआ वहिणि म्हारा कंतु ।
तजज्जुं न वयंसिः हु जइ भगा घर एंतु ॥

भल्ला हुआ, मारिआ, भगा खड़ी बोली की क्रियाएँ हैं, म्हारा सर्वनाम और लज्जेज्जुं संयुक्त क्रिया। संयुक्त क्रिया भी खड़ी बोली को एक विशेषता है। यद्यपि अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में भी यह प्रवृत्ति है किन्तु खड़ी बोली में संयुक्त क्रियाओं का जितना स्वतंत्र और व्यापक विकास हुआ है उतना अन्यत्र नहीं।

अपन्नें के बाद नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में खड़ी बोली एक प्रमुख बोलचाल वी भाषा रही जिसे इधर-धूमने वाले नाथन्थी साधुओं ने अपनी रचना का माध्यम बनाया। गोरखनाथ की भाषा का मूलाधार खड़ी बोली ही है यद्यपि उसमें काफी तत्त्व ब्रज और राजस्थानी के भी हैं। नाथ-मिद्धों को लेन्हर सन्तों की रचनाओं तरु सभी का मूलाधार खड़ी बोली है लेकिन स्थानानुसार उसमें स्थानीय भाषाओं के कुछ रूप भी प्रयुक्त हुए हैं।

खुसरो की हिन्दी रचनाओं का भाषा-रूप खड़ी बोली है जो उस समय मध्य-देश में बहुप्रचलित भाषा थी। ऐसा लगता है कि ब्रज और राजस्थानी बोलियाँ परम्परा से काव्य के लिए स्वीकृत भाषाएँ थीं और अधिकतर साहित्य हिन्दी बोलियों में रचा जाता था। खड़ी बोली सामान्य बोलचाल के लिए बहुत बड़े क्षेत्र में प्रचलित थी और इसीलिए खुसरो ने इस भाषा-रूप को ‘ हिन्द की तूती ’ कहा है। खुसरो की रचनाओं की खड़ी बोली देखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को यह आश्चर्य हुआ कि क्या उस समय तक भाषा धिसकर इतनी चिकनी हो गई थी जितनी पहेलियों में मिलती है? इसके सम्बन्ध में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि खड़ी बोली का प्रयोग ग्यारहवीं शताब्दी से चला आ रहा था। यदि तेरहवीं शताब्दी में उस भाषा का इतना निखरा हुआ रूप मिलता है तो इसमें आश्चर्य की क्या वात? यह अवश्य है कि खुसरो की हिन्दी रचनाएँ मौखिक रहने के कारण कुछ बदल गई होंगी, किन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उस भाषा का अस्तित्व नहीं था। अतः यह मानकर चलना चाहिए कि खुसरो की खड़ी बोली में छिटपुट परिवर्तन हुए होंगे। इन परिवर्तनों के बाद भी खुसरो की भाषा अपनी मौलिकता कहीं खई नहीं। अतः उस भाषा-रूप की क्तिपय भाषिक विशेषताएँ आगे प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

अमीर खुसरो की हिन्दी रचनाएँ कितनी हैं यह कह सकता बहुत कठिन है। कहा जाता है कि उन्होंने हिन्दी में फारसी से कहीं अधिक लिखा था किन्तु इस समय कुछ पहेलियों, मुकरियों तथा फुटकल रचनाओं को छोड़कर और कुछ नहीं मिलता। इनकी सभी प्राप्त हिन्दी रचनाएँ “खुसरो की हिन्दी कविता” शीर्षक से नागरी प्रचारणी, काशी से प्रकाशित हैं। इसके अलावा उन्होंने फारसी-हिन्दी में एक बड़ा शब्दकोश बनाया था जो अब अधूरा ही मिलता है। कोश का नाम है “खालिकवारी”। यह कोप पद्य में है। खुसरो का लेखन किसी सम्प्रदाय या प्रवृत्ति-विशेष से सम्बन्धित नहीं है। वे किसी प्रकार का आनंदोलन भी नहीं करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने तत्कालीन बोलचाल की भाषा में लिखा जो सरल और स्वाभाविक है। कई सौ वर्षों तक मौखिक रूप में चली आती इनकी मुकरियों और पहेलियों की भाषा में कुछ विसाई तो अवश्य हुई होगी पर उसके मौलिक शब्द नहीं बदले हैं।

खुसरो की हिन्दी भाषा की कुछ सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

नव्य भारतीय आर्य भाषा की सभी ध्वनियों का इसमें प्रयोग हुआ है। ऋ और प ध्वनियाँ इनमें नहीं प्रयुक्त हैं। उन ध्वनियों के स्थान पर रि तथा स या ख प्रयुक्त हुई है। पुरुष सर्वदा पुरिख लिखा गया है। ड़ और ढ़ ध्वनियों का प्रयोग स्पष्टता के साथ हुआ है। अधिकतर शब्द स्वरान्त हैं। नासिक्य स्वरों का प्रयोग बहुतायत से हुआ है।

रूपरचना की दृष्टि से खुसरो की हिन्दी आज की खड़ी बोली से काफी साम्य रखती है। इसमें दो वचन हैं और दो लिंग। अधिकतर संज्ञाओं का रूप दोनों वचनों में एक ही है लेकिन उनके तिर्यक रूपों में बहुवचन का निर्देश स्पष्ट रूप से होता है। जैसा—मुँहहिं (मुँहों से), नैनन (नैनों में), होँठन (होठों से), टाँगन (टाँगों में)। अ, आ, ऊ और औ से अन्त होनेवाली संज्ञाएँ प्रायः पुल्लिंग हैं तथा अ और ई से अन्त होनेवाली स्त्रीलिंग। जैसे—

पुल्लिंग—आम, सिंगार, राजा, ताना-वाना, हिन्दू, गुरु।

स्त्रीलिंग—छाँव, रीत, गन्नी, ठठोली, नारी।

पुल्लिंग से स्त्रीलिंग बनाने के लिए—ई और कहीं कहीं-नी प्रत्यय जोड़ा गया है। जैसे—गढ़ा-गड़ी, ढोलक-ढोलकी, कुल्हाड़ा-कुल्हाड़ी, डोम-डोमनी, मेहतरानी।

कारकीय प्रयोग दो प्रकार के हैं। एक तो कारक चिह्नों से युक्त हैं और दूसरे कारक चिह्न रहित हैं। दोनों के उदाहरण अगले पृष्ठ पर दिए गए हैं:-

कारक चिह्न युक्त

कर्ता कारक – गुनी ने, नार ने
 कर्म कारक – पी को, हाथी को
 करण कारक – पाँव से. सींगों से
 सम्प्रदान कारक – मन को, मोको
 अपादान कारक – मुँह से
 षंबंध कारक – राजा की, जल का
 अधिकरण कारक – हाथ में, घर माँ

कारक चिह्न रहित

नार उतरी, लड़के रखे हैं
 छाँव देख, लकड़ी खाये
 आँखों दीठा, छाती लगाये
 घर धावे
 तरवर उतरी
 खूंटी ऊपर, श्याम बरन नारी
 घर आवे, आँखों आया

संज्ञाओं के तिर्यक वहुवचन रूप में प्राय. कारक चिह्न नहीं हैं। कुछ रचनात्मक प्रत्यय भी हैं जो कारक का कार्य करते हैं। जैसे हि (तिरियहि) (कर्मकारक), न (नैनन) अधिकरण कारक।

इसके अलावा परसर्ग भी हैं जो कारक के लिए प्रयुक्त हुए हैं। जैसे-- खातिर (सम्प्रदान), ते (करण) माँहि (अधिकरण)।

सर्वनामों के प्रयोग बहुत थोड़े-से हुए हैं जो ये हैं—

व्यक्तिवाचक ...

प्रथम पुरुष – मै, मेरे, हमसे, अपने, मोहि।
 मध्यम पुरुष – तू, तेरे, तोहि।
 अन्य पुरुष – वह, वाको, उमके, वाके, ताके, वाका।

सम्बन्धवाचक – जो, जिसके, जाके।

संकेतवाचक – इसका, उससे।

अनिश्चयवाचक—सवको।

विशेषण और क्रिया विशेषण के रूपों में कोई विशेष उल्लेखनीय वात नहीं है, किन्तु इतनी वात अवश्य ही द्रष्टव्य है कि तत्कालीन प्रचलित ब्रजभाषा और राजस्थानी के रूपों का प्रयोग बहुत कम हुआ है।

खुसरो की हिंदी भाषा में क्रिया के रूपों में काल (वर्तमान, भूत, भविष्य), भाव (विधि, अनिश्चय), वचन (एक, बहु.), लिंग (पुलिंग, स्त्रीलिंग) और पुरुष (उत्तम, मध्यम, अन्य) का निर्देश मिलता है। इसके अतिरिक्त कृदन्त प्रेरणार्थक, संज्ञार्थ क्रिया आदि के रूप अलग-अलग हैं।

खुसरो की भाषा में वर्तमानकाल के रूप दो प्रकार के हैं। पहला आर्य भाषा की पुरानी परंपरा से अपभ्रंश का विकसित रूप है जिसमें लिंग का कोई निर्देश

नहीं है। वे पुलिंग और स्त्रीलिंग दोनों के लिए प्रयुक्त हुए हैं। इसी तरह उत्तम और मध्यम पुरुष में कोई बहुवचन का रूप नहीं मिलता जब कि अन्य पुरुष में दोनों अलग अलग रूप मिलते हैं। विभिन्न कालों के रूप निम्नलिखित हैं—

वर्तमान — उत्तम पुरुष— रौदू, धूँ, फेनू, कहूँ, पूँछी ।
मध्यम पुरुष— बोलिए, करिए, खेलिए ।
अन्य पुरुष— आवे, खोले, पीवे, बुझावे ।

दूसरा कृदत्तीय रूप है। क्रिया के इन रूपों में कर्ता के वचन और लिंग का संकेत होता है। यथा— विकते हैं, खाते हैं, चलता है, लगावत, उड़ती है, रखते हैं।

भूतकाल— भूतकाल की क्रिया में पुरुष वा कोई निर्देश नहीं कितु वचन और लिंग का निर्देश है। भूतकालिक क्रिया के रूप निम्नलिखित हैं—

खड़ी, देखा, खाया, उड़ाई, कह दिया, कीनी, दीनो ।

भविष्यकाल— भविष्यकाल के रूपों का भी निर्माण दो प्रकार से हुआ है। पहला विभक्त्यात्मक रूप है जिसमें लिंग का कोई निर्देश नहीं है, जैसे करिहौं खाई हौं। कितु ये रूप बहुत कम, गिनती के हैं। दूसरा संयुक्त रूप है जिसमें क्रिया का रूप तथा गा, गी, गे प्रत्यय होता है। इसमें लिंग का निर्देश प्रत्यय द्वारा तथा वचन और पुरुष वा निर्देश स्वयं क्रिया के मूल रूप में होता है। जैसे—

उत्तम पुरुष— दूँगा, दूँगी ।
मध्यम पुरुष— पकाओगी ।
अन्य पुरुष— वूजेगा, सूजेगा ।

खुसरो की हिंदी में संशयार्थक और विद्यर्थ दोनों रूपों में अन्तर मिलता है। ये रूप कर्ता के वचन और पुरुष से प्रभावित होते हैं। संशयार्थक भाव के रूप इस प्रकार हैं—

उत्तम पुरुष— कहूँ, सुनूँ, दौड़ूँ, मारूँ ।
अन्य पुरुष— उपजे, रहे, धरे ।

विद्यर्थ रूपों के प्रयोग काफी मात्रा में हुए हैं। ये रूप दो प्रकार के हैं—

बृज, छोड़ो, पूछो, देखो, बताओ ।
दीजे, लीजे ।

पूर्वकालिक क्रियाएँ प्रकृति में क्रिया विशेषण जैसी हैं और कर्ता के या कर्म के वचन, लिंग या कारक से प्रभावित नहीं होतीं । इनकी रचना निम्नलिखित प्रकार से हैं—

भेज, पीकर, दौड़, वैठ के, पीकर ।

खुमरो की हिंदी भाषा में शब्द रचना भी महत्वपूर्ण है । यहाँ एक ही प्रत्यय का उल्लेख करना चाहता हूँ । वह है— ईला । खड़ी बोली में इस प्रत्यय द्वारा संज्ञा से विशेषण बनाने की प्रवृत्ति है । खुसरो की हिंदी में इसके उदाहरण मिलते हैं,

जैसे—

दंताली, गैठीना, रंगीला, चटकीला ।

खड़ी बोली की प्रकृति के अनुसार खुसरो की हिंदी में संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग अधिक संख्या में हुआ है । इनमें से मुख्य क्रिया पूर्वकालिक क्रिया के रूप में, या क्रियार्थक संज्ञा के रूप में या कृदन्त के रूप में हैं । जिन संयुक्त क्रियाओं में पूर्वकालिक क्रिया मुख्य क्रिया है उनमें पूर्वकालिक क्रिया में कोई परिवर्तन नहीं होता । वचन, लिंग और काल का निर्देश गौण क्रिया द्वारा होता है ।

पूर्वकालीक क्रिया, मुख्य क्रिया है—

उमड़ आया, डाल दिखाया, फिर आई, आन बुझाये ।

क्रियार्थक संज्ञा मुख्य क्रिया है—

विछुड़न लागा, खान लागी, मारन लागा ।

कृदन्तेय रूप मुख्य क्रिया है—

लचकत आया, रोवत जाए, फूँकत फिरै, सोवत जगावै ।

इस भाषा में कुछ उदाहरण प्रेरणार्थक क्रिया के भी हैं । उदाहरणार्थ— करावत, लचकावत, बिसरावे, खटकावै, परखाया ।

खुसरोकी हिंदी भाषा में प्रयुक्त शब्दों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि तत्सम शब्दों का प्रयोग बहुत ही कम है । वस्तुतः यह बोलचाल की भाषा थी

जिसमें तद्भव शब्द ही अधिक प्रयुक्त होते थे। तत्सम की तुलना में देशज शब्दों का प्रयोग अधिक है। पारसी के शब्द भी कहीं-कहीं मिलते हैं। पर कुल मिलाकर शब्दों के आधार पर यह भाषा तद्भव शब्दों की भाषा कही जा सकती है। वस्तुतः खुसरो ने इस भाषा-रूप को अच्छे ढंग से पहचाना था और वे उसकी तह तक पहुँचे थे। यही कारण है कि उस समय की बोलचाल की भाषा उनकी रचना में पूर्ण रूप से उतरी है।

अमीर खुसरों की गद्य कृतियाँ

डॉ. राजनारायण राय



अमीर खुसरो मूलतः फारसी के कवि हैं।
इनकी सृजनात्मक प्रतिभा के संस्पर्श से फारसी
का दीवान—मरनवी साहित्य चमत्कृत हुआ है।
यही कारण है कि इनकी परिगणना फिरदोसी,
शेख सादी, खम्सा रचनाकार निजामी जैसे-
अगुलिगण्य महाकवियों के साथ की जाती है।
भारतीय फारसी साहित्य की उपलब्धियों की
जहाँ कहीं चर्चा होगी, अमीर खुसरो का
गौरववर्द्धक प्रदेय प्रथमोल्लेख्य रहेगा।
नक्कादों की दृष्टि सिर्फ उनकी काव्यकृतियों
पर जाती है गद्यात्मक रचनाओं पर नहीं; यद्यपि
जो कुछ भी कवि ने लिखा है वह उपादेय और
महत्वपूर्ण है।

यह सच है कि गद्यसृजन में कवि की सहृदयता और तन्मयता लक्षित नहीं होती और यह भी कि काव्य-निर्माण की तुलना में यह कार्य निकृष्ट था किंतु यह मानना गलत होगा कि इनकी गद्यात्मक रचनाएँ उपेक्ष्य और अनुल्लेख्य हैं। खुसरो प्रणीत कई कृतियाँ मानी जाती हैं परंतु उनमें तीन ही प्रामाणिक अतः कवि-कृत मिछ होती है। शेष की प्रामाणिकता अद्यावधि संदिग्ध है। प्रथम है 'एजाजे-खुसरबी' जिसकी रचना ७१९ हिजरी में अर्थात् लेखक की वृद्धावस्था में समाप्त हुई। अमीर खुसरो ने इसमें यह सिद्ध कर दिया है कि वह केवल ऐतिहासिक रोमांटिक मस्नवियों के सृजन में ही निपुण नहीं है अपितु गद्यक्षेत्र में परम्परागत और प्रचलित रीति का परित्याग कर नितांत नूतन शैली की उद्भावना में भी समर्थ है। इतना ही नहीं, इहाम और ख्याल जैसे कई गद्यालंकारों एवं शोभाविधायक रीति युक्तियों को ईजाद कर फारसी-उर्दू के नवलेखकों का हितावह मार्गदर्शन किया है।

'एजाजे खुसरबी' के अनुसार तद्युगीन नौ विभिन्न शैलियों का संकेत मिलता है जिनका दामन छोड़ खुसरो ने नए मार्ग का अन्वेषण किया। वे निम्नलिखित हैं:-

- (१) सूती संतों की सरल एवं आडम्बरहीन शैली।
- (२) विद्वानों और माहित्यान्वेषकों की प्रभावशाली एवं तर्कसम्मत शैली।
- (३) पंडितों एवं ज्ञानियों की शैली।
- (४) वाक्पटु व्याख्याताओं की सुवोध या आडम्बरयुक्त शैली।
- (५) शिक्षकों और उपदेशकों की शैली।
- (६) जनसाधारण की स्पष्ट, सरल एवं अनलंकृत शैली।
- (७) शिल्पकारों एवं कारीगरों की आडम्बरहीन शैली।
- (८) विदूपकों, मस्खरों एवं भाँड़ों की गुदगुदी पैदा करनेवाली शैली।
- (९) धर्मपत्रलेखन कलाकारों (epistle writers) की स्पष्ट और मसृण शैली जिसमें अरबी और फारसी का न्यायसंगत प्रयोग होता था। इसका नमूना कलीला व दिम्नाह में देखा जा सकता है।

अमीर खुसरो ने सभी शैलियों को समीक्षात्मक दृष्टि से परखकर उन्हें अनुपयुक्त बताया है और सर्वथा नूतन रीति प्रवर्तित की है जिसे दोषमुक्त नहीं कहा जा सकता।

'एजाजे खुसरवी' जिसका अर्थ है 'खुसरो का चमत्कार', पाँच रिमालों अर्थात् पाँच छोटी-छोटी पुस्तिकाओं में विभक्त है। प्रत्येक रिमाले में खत या अध्याय है; और प्रत्येक खत में अनेकानेक हर्फ़। प्रथम रिमाले में खुसरो ने काव्य-मृजन के प्रेरक तत्त्वों का सविस्तार विवेचन किया है जिसके मंदर्भ में पुरानी गद्य लेखन शैली के दोपों का उल्लेख करते हुए उसमें आदेशक चटपटापन और लज्जतदार जायके की शून्यता बताई है। 'एजाजे खुसरवी' की जैनी के सम्बन्ध में लेखक का कहना है कि वह इनकी अपनी है।¹ दस्तुतः वह अलंकार-प्रथा-न-भाषा-र्णवी का एक प्रभेद है।

अमीर खुसरो का कहना है कि भारतीय फारसी गद्य-लेखन में न्यूनातिन्यून अरबी शब्दों का प्रयोग होना चाहिए। कलात्मक प्रभविष्णुता के लिए द्वयश्वरं क शब्दों का प्रयोग बांछनीय है। खुसरो ने इसी अध्याय ने भाषा जैनी के, उपयुक्त शब्दचयन, सटीक मुहावरा-प्रयोग, भावोचित वाक्य संरचना आदि तत्त्वों पर भी आस्फालन किया है जो फारसी-उर्दू साहित्यकारों के लिए अनुग्राह्य है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह अध्याय अमीर खुसरो के आचार्यत्व का स्पष्ट निर्देशक है। यदि तत्कालीन पत्र-लेखन-पद्धति के उत्कृष्ट नमूने और स्वरूप की जानकारी प्राप्त करनी हो तो इस ग्रंथ का दूसरा रिसाला देखना चाहिए। इसमें अनेकानेक विषयों से संबद्ध विभिन्न रूपों के ऐसे पत्रों का अमूल्य संग्रह है जिन्हें अमीर खुसरो ने विभिन्न स्थानों में और अनेक तरह की परिस्थितियों में लिखा है। इसमें प्रेमी-प्रेमिकाओं के मीठे और सरस पत्र हैं तो फरमान और कार्यालय के नीरस पत्र भी कम नहीं हैं। किसी में तांबूल की महिमा एवं चर्वणरीति वर्णित है, किसी में तत्कालीन संगतकारों और विविध वाद्ययंत्रों का परिचयात्मक विवरण है। एक पत्र में नूरमनी खातून का जिक्र है जो गायक मंडली की सदस्या थी और जिसे अमीर खुसरो की नजरे-इनायत से सुलतानी दरबार में प्रतिष्ठा मिली थी। वह ईरानी और भारतीय गायकों की सभा की अध्यक्षा थी। कुछ पत्रों में ज्योतिष, भौतिक विज्ञान, औपध विज्ञान, चेस और शिकार के बारे में सामग्री मिलती है। अमीर खुसरो ने एक पत्र सद्गुटीन के नाम से लिखा है जिसमें केले की मिठास और स्वाद का वर्णन है। इन पत्रों की भाषा फारसी है जिसमें यथावसर

1. The originality consists mainly in the employment of a series of metaphors, each being sustained throughout one paragraph admittedly an innovation of the poet.

अरबी-तुर्की के शब्दों का प्रयोग हुआ है। शिहाबुद्दीन के नाम लिखा गया एक ऐसा भी पत्र है जो अरबी भाषा में है। एकाध पत्र में खुसरो की दृष्टि अत्यंत शुद्धतावादी रही है जिसके फलस्वरूप अरबी शब्दविहीन शुद्ध कारसी भाषा की छटा लक्षित होती है।

तीसरे रिसाले में गद्य शोभाविधायान अनंकारादि का विवेचन है। इसमें अमीर खुसरो ने नवलेखकों के लिए परमोपयोगी गद्य-लेखन की विधि बताई है। यह अंश, अन्य रिसालों की तुलना में, नीरस, अरोचक और दुर्बोध है।^१

चौथा रिसाला विविध विषयों से संबंधित पाँच खतों का अच्छा संग्रह है जिससे कानून, धर्मग्रंथ, भाष्य लेख, तर्कदर्शनशास्त्र, व्याकरण, अभिधानशास्त्र, नीति, विज्ञान आदि विभिन्न विद्याओं की तत्कालीन उपलब्धि का बोध होता है। इसमें फरमान भी संकलित हैं जिन्हें सुलतान ने अपनी गद्दीनशीनी पर जारी किया था। एक पत्र में दादा और उनके पोतों में होनेवाले कटुमधुसिक्त वाद-विवाद का मनोरंजक वर्णन है। अमीर खुसरो ने अपने आत्मज यामीनुद्दीन मुबारक को भी खत लिखा था जिसका प्रमाण मौजूद है। इस रिसाले का समापन पैगंबर का गुलाव-प्रेम, उसकी गुलाबी रंगोबू आदि के वर्णन और अल्लाह के प्रति दया व क्षमायाचना के लिए प्रार्थना से होता है। यह ज्ञातव्य है कि इसका आरंभिक अंश महत्वपूर्ण है क्योंकि उसमें इन्सान, उसकी महानता, अक्षय यशप्राप्ति के साधन के अतिरिक्त गद्य-लेखन की विविध शैलियों एवं ईहाम ख्यालादि अर्थालिंकारों की भी परिचयात्मक व्याख्या है।

लेखक ने कुछ पत्रों में तिथि नहीं दी है जिससे इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध हो जाती है। निष्कर्षतः ये पत्र सरल और दिलचस्प हैं, साथ ही ज्ञानवर्धक भी।

पाँचवाँ रिसाला व्यंग्य-विनोदपूर्ण पत्रों का संग्रह है जिनकी रचना खुसरो ने जवानी के मौज में की थी। सैफुद्दीन के नाम लिखित वाखिलासपूर्ण पत्र में कलम और तलवार की ताकत का अच्छा तुलनात्मक वर्णन है। अतिवृष्टि से जो परेशानी, तबाही लेखक को हुई उसका मनोरंजक उल्लेख ताजुद्दीन जाहिद को

1. ... The poet explains and illustrates the use of literal or verbal artifices in prose ... The risala is dull and uninteresting.

—Dr. Wahid Mirza : The Life and Works of Amir Khusrau

P. 218.

लिखे गए पत्र में हुआ है। मकबीवृत्त ख्वाजा की विचित्र हरकतों, फटीचर चीजों, फटीचर भाँडों, फटेहाल विटूपकों, बड़े नर्तकों के विविध व्यापारों एवं उनके हास्यालापों का अमीर खुसरो ने ऐसा उद्घाटन किया है कि तबीयत खुश हो जाती है।¹ ये पत्र सच्चे अर्थ में व्यंग्यविनोदपूर्ण पत्रलेखन रीति के सुंदर नमूने हैं जिनकी ज्ञमक अद्यावधि बनी है।²

भाषा शैली की दृष्टि से, पाँचवें रिसाले के पत्रों को ही चौथे में रखा जाना चाहिए था क्योंकि सृजनकाल की दृष्टि से यही अपेक्षित है। खुसरो के इन पत्रों में न कोई कृत्रिमता, न कोई दुराव छिपा है। निस्संदेह इनके निश्चल, अकृत्रिम और कोमल मनोभावों का स्पष्ट प्रकाशन इनमें होता है। इस रिसाले के अंत में रचनाकार ने अपनी त्रिटियों की क्षमायाचना तथा अपने सहृदय साहित्यिक दोस्त शिहाबुद्दीन के प्रति, जिन्होंने क्रमस्थापन, श्रेणी-विभाजन एवं पुनर्निरीक्षण में सहायता की है, मुक्त कंठ से आभार ज्ञापन किया है। इसके साथ ही, साहित्यालोचकों से उदार होने एवं ग्रंथ की खूबियों की उपेक्षा न करने के लिए सविनय निवेदन भी है।

कई अत्याशुनिक नकादों की दृष्टि में यह कृति महत्त्वहीन एवं बेहद कमज़ोर है, पर यह दृष्टिकोण अतिवादियों का है। अमीर खुसरो और उनके पूरे परिवेश को समझने-परखने के लिए इस कृति को अनिवार्य महत्त्व है और रहेगा। निष्कर्पतः एजाजे-खुसरवी अपने महान् साहित्यकार के दिल और दिमाग का सच्चे अर्थ में दर्पण है।

खजाइनुल फतह : यह खुसरो की दूसरी गद्यकृति है जिसका रचनाकाल ७११ हिजरी है। उसका दूसरा नाम तारीखे-अलाई है। प्रोफेसर मुहम्मद हबीब ने इसका अंग्रेजी अनुवाद 'द कम्पेन्स ऑफ अलाउद्दीन खिलजी' के नाम से प्रकाशित कराया है।

यह गद्यात्मक ग्रंथ अलाउद्दीन खिलजी-कालीन घटनाओं का पूरे विस्तार से उद्घाटन करता है। समकानीन तारीखनवीसों की इतिहास कृतियों में यह सर्वाधिक प्रामाणिक एवं उपयोगी है। मध्यकालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक

1. Many of them evidently addressed to factitious persons, but there are some genuine letters that bears date.

--Dr. Wahid Mirza : The Life and Works of Amir Khusrau P. 219

2. These last letters are good specimen of a kind of humour, indecent even to the extent of vulgarity popular with old eastern writers, and not extinct even today. वही P. 216

और धार्मिक परिस्थिति एवं ऐतिहासिक महत्व की घटनाओं का सम्यक् अध्ययन इसके अभाव में असंभव नहीं पर दुष्कर अवश्य माना जा सकता है। इसके माध्यम से खुसरो ने केवल गद्यकाव्य सृजन की अपनी विलक्षण शक्ति का परिचय दिया है अपितु अल्लाउद्दीन खिलजी की चारित्र्यगत उदात्तता को यथाशक्ति उभारकर उसको अमरत्व प्रदान किया है। एक महान् शायर की तारीखनवीसी का यह अत्युत्तम उदाहरण है। इस कृति के प्रमुख वर्ण विषय निम्नलिखित हैं—

- (क) देवगिरि पर विजय प्राप्ति के लिए अल्लाउद्दीन का प्रस्थान।
- (ख) अल्लाउद्दीन की शासन-व्यवस्था तथा नूरुल ऊदल का निर्माण।
- (ग) मस्जिदे जाम-ए-हज़रत का निर्माण और उसकी शोभा।
- (घ) देहली के किले का पुनर्निर्माण और भव्य सजावट।
- (ङ) शम्सी नामक हौजे मुल्तानी का निर्माण।
- (च) मुगलों से इस्लामी फौज का युद्ध एवं विजय।
- (छ) रणथम्बोर विजय।
- (ज) मालवा व माडू विजय।
- (झ) चितौर फतह
- (ञ) देवगिरि की ओर प्रस्थान।
- (ट) आरंगन विजय
- (ठ) देवगिरि नरेश रामदेव की युद्ध की तैयारी, इस्लामी फौज की सजावट युद्धादि तथा समर्पण।
- (ड) मावर विजय व वीर घोर द्वारा मंदिर रक्षा का प्रयत्न।
- (ढ) मोती तथा लाल की शोभा।
- (ण) इस्लामी सेना की वापसी।
- (त) अल्लाह ताला से प्रार्थना।

अल्लाउद्दीन खिलजी की विजय गाथा और इस्लामी फौज का शौर्यवृत्त प्रस्तुत करने में जिस सतर्कता एवं निपुणता का परिचय दिया है वह इतिहासकारों के लिए मार्गदर्शक है। परंतु, इसका यह अर्थ नहीं कि यह कृति सर्वथा निर्दोष है क्योंकि खुसरो की दृष्टि सर्वत्र इतिहासकार की नहीं रही है। जहाँ कहीं राजकवि की चेतना प्रखर हुई है, इतिहासकार का व्यक्तित्व कुंठित हो गया है। उन्होंने उन घटनाओं का उल्लेख नहीं किया है जिनसे सुलतान के महान् व्यक्तित्व की दुर्बलता व्यक्त होती है। उदाहरणतः ‘मुगलों के आक्रमण में खुसरो ने कुलतुग खाजा

सल्दी तथा तरगी के 'आक्रमणों का उल्लेख भी नहीं किया है' ^१ जब कि अन्य समकालीन इतिहासकारों ने उसकी चर्चा की है। इसी तरह, इस कृति की भाषा-शैली में इतिहासकार का व्यक्तित्व सामने नहीं आता। इसकी भाषा, वस्तुतः पाण्डित्य प्रदर्शक गद्यकार की है; रूपक, उपमादि अलंकारों के प्राचुर्य और अरबी-फारसी के अप्रचलित शब्दों के आविक्य ने इसकी सुवोधिता और स्पष्टता को खंडित कर दिया है। इसमें कोई शक नहीं कि इसकी भाषाशैली मौलिक है; कितु इतिहास के संदर्भ में इसे कृत्रिम और अनुपयुक्त ही माना जाएगा। डॉ. वहीद मिर्जा का यह कथन मान्य है कि अलंकार बोझिल भाषा होने के कारण इसका अभिप्रेत भाव समझ लेना आसान नहीं है और यह भी कि पाठकों की शक्ति और थम का अपव्यय होता है। ^२ इन सारे दोषों का मूल कारण उन ही खुशामदी एवं अद्भुत भाषाधिकार दिखाने की प्रवृत्ति है। पर, जो इसे इतिहास ग्रंथ नहीं प्रत्युत कलात्मक गद्यकाव्य मानते हैं उनके तर्कों से असहमत नहीं हुआ जा सकता।

अफजलुल फवायद-ख्वाजा निजामुद्दीन महबूबे इलाही के कई मुरीद हुए कितु उनमें से दो शायरों ने उनके धर्मोपदेशों, प्रवचनों एवं उसूनों को संग्रह का ग्रंथरूप देने का प्रयत्न किया। प्रथम हैं अमीर हसन देहलवी जिन्होंने 'फवायद उल फवायद' में अपने अध्यात्म गुरु के मलकूज्जात संग्रहीत किए, द्वितीय हैं अमीर खुसरो जिनका यह संग्रह है। दोनों ग्रंथों को सामने रखकर देखने पर 'अफजलुल फवायद' हसनकृत 'फवायद उल फवाद' के आलोक में लिखा गया प्रतीत होता है। पर इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रवृत्ति एवं उद्देश्य की भिन्नता के कारण, यह ग्रंथ 'एजाजे-खुसरवी' और 'खजाइनुल फतह' से सर्वथा भिन्न है।

इस ग्रंथ में अमीर खुसरो की सृजन क्षमता की अभिव्यक्ति नहीं है जिसके फलस्वरूप साहित्यालोचकों एवं नवकादों की नजर से यह प्रायः दूर रहा है। इसका अर्थ यह नहीं कि यह अनुपयोगी घटिया एवं उपेक्ष्य ग्रंथ है। महबूबे इलाही और खुसरो के पारस्परिक सम्बन्ध, उनके आध्यात्मिक विचारों एवं मजहबी ख्यालों

१. सद्यद अब्बास रजबी : खिलजी-कालीन भारत : समीक्षा

२. But one cannot help feeling sorry for the loss of time and energy caused by the adoption of such an artificial style in prose, and it is not very easy to follow the sense clearly through all the mazes of similes and metaphors.

का पूर्ण परिज्ञान पाना इसके अभाव में मुश्किल है। इसमें उन संत गोप्तियों का विशद वर्णन है जिनमें लेखक खुसरो के अलावा नज़मुदीन हसन, अलाए संजरी मौलाना नजीबुदीन पाली, मौलाना शिहाबुदीन (मेरठवासी) मौलाना वुरहानुदीन गरीब जैसे अनेक प्रख्यात संत शायर शामिल होकर इलमी समस्याओं पर बहस करते थे। और एक-दूसरे की मज़हबी मान्यताओं को शांतिपूर्वक सुनते थे। कवाल अपने आमोदजनक गानों से समुचित लोगों को आत्मविभोर कर देते थे।

इस ग्रंथ के चार भाग हैं। प्रथम भाग में महबूबे इलाही की स्तुति है। ग्रंथकार ने अपनी दीक्षा और गुरु से मिलनेवाली टोपी और चोगा (vest) का वर्णन किया है। डॉ. वहीद मिर्जा के अनुसार यह अंश हज़रत महबूबे इलाही को दिखाया गया था और उन्होंने गद्गद होकर अपने मुरीद खुसरो को कार्य पूरा करने की अनुमति दी थी। इतना ही नहीं, पुरस्कारस्वरूप उन्होंने टोपी और चोगा भी प्रदान किया था। इसका दूसरा खंड लेखक ने पूरा नहीं किया। इस की भाषा अलंकार गुम्फित नहीं, अतः सरल सुवोध एवं प्रवाहपूर्ण है। इसे तत्कालीन बोली जानेवाली फारसी का नमूना माना जा सकता है।

उपर्युक्त गद्यात्मक कृतियाँ यह प्रमाणित करती हैं कि अमीर खुसरो को गद्यलेखन में पूरी सफलता मिली है और यह भी कि गद्यकार का व्यक्तित्व एक अद्भुत संश्लेषण है—आचार्य, पत्र-लेखक, इतिहासकार, धर्मनिष्ठ, संगीतकार और कवि का। इन ग्रंथों की उपेक्षा से न तो कृति कलाकार तूती-ए-हिंद की जीवनी जानी जा सकती है, न इनके उस माहौल या परिवेश की ही जिसके ये भोक्ता, निर्माता और आलोचक रहे हैं। मध्यकालीन इतिहास के पुनर्निर्माण में, विशेषतः राजनीतिक-सांस्कृतिक इतिहास के अध्ययन में अमीर खुसरो के गद्यग्रंथों का अनुशीलन अनिवार्य रहेगा।

• • •

अमीर खुसरो की हिंदी पहेलियाँ

डॉ. 'स्वर्ण किरण'

*****●*****●*****●*****●*****

अमीर खुसरो यद्यपि मुख्य रूप से फारसी के कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं तथापि उनकी लोकप्रियता का कारण उनकी 'हिंदवी की रचनाएँ' ही है। अरबी, फारसी के साथ-साथ हिंदवी के ज्ञान पर भी उन्हें गर्व रहा। उनकी स्वीकृति है कि मैं हिंदुस्तान की तूती हूँ। अगर तुम वास्तव में मुझसे जानना चाहते हो तो हिंदवी में पूछो। मैं तुम्हें अनुपम बातें बता सकूँगा। स्पष्ट है कि खुसरो का हिंदी-प्रेम और हिंदी की शक्ति के प्रति आस्था कम नहीं है।

फारसी में अमीर खुसरो ने बहुत अधिक लिखा। फलतः उनकी गणना फिरदोसी, शेख सादिक और निजामी जैसे फारस के महाकवियों के साथ की जाती है। स्पष्ट है, खुसरो ने फारसी का गहू़न अध्ययन किया और फारसी के

लालित्य और मार्दव को अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत कर ख्याति अंजित की, पर फारसी भाषा में दक्ष व्यक्ति केवल फारसी का ही जानकार कैसे रह सकता है ? फारसी के साथ संस्कृत, अरबी, तुर्की, हिंदवी (अपने इर्द-गिर्द की लोक-भाषाओं) आदि का विस्तृत अध्ययन खुसरो ने किया । 'खालिकबारी' आदि-कोष इसका प्रमाण है, जिसमें खुसरो ने अरबी, फारसी और तुर्की शब्दों के पर्याय हिंदी में पद्यबद्ध रूप में दिए हैं । खुसरो की पहेलियाँ हिंदी (सुसभ्य समाज की भाषा, शिष्ट भाषा, व्याकरण सम्मत भाषा) और हिंदवी (हिंदुओं की ग्रामीण भाषा, बोलचाल की भाषा) में प्रस्तुत हुई ।

हिंदी या हिंदवी में पहेलियों की परंपरा कदाचित् संस्कृत से आई । पहले शब्द संस्कृत के प्रहेलिका ' ' प्र-विशेषण हिलती अभिप्राय सूचयति इति ' शब्द से निःसृत है । मतलब, पहेली या प्रहेलिका वह है जहाँ अभिप्राय की सूचना मात्र मिले, संकेत भर प्राप्त हो । संस्कृत में प्रहेलिका अंतर्लापिका या बहिर्लापिका के रूप में उपस्थित है । ^१उदाहरणार्थ,

कस्तूरी जायते दस्मात् को हन्ति करिणां कुलम् ।
किं कुर्यात्कारो युद्धे मृगात्सिहः पलायनम् ॥

अर्थात्—कस्तूरी किससे होता है ? (मृगात्—मृग से ।) हाथियों के कुल को कौन मारता है ? (सिहः—सिह ।) युद्ध में कातर (व्यक्ति) क्या करता है ? (पलायनम्—पलायन ।) मृग से सिंह पलायन करता है !

सीमन्तिनीषु का शान्ता राजा को ऽभूदगुणोत्तमः ।
विद्वद्भिः का सदा बन्द्या अत्रेवोक्तं न बुद्ध्यते ॥

१. प्र + हेल् + इच्छा संज्ञायाँ अन्-प्रहेलिका ।

व्यक्तिकृत्य कमप्यर्थं स्वरूपार्थस्य गोपनात् ।
यत्र बाह्यान्तरावर्थो कथ्येते सा प्रहेलिका ॥

अर्थात्—अपने रद्दूरूप को छिपाकर किसी भी अर्थ को व्यक्त करके बाह्य या अंतर अर्थ को, जो संकेतित करे, वह प्रहेलिका है ।—वाच्-पत्यम्, भाग ६, चौखंभा संस्कृत सेरीज ऑफिस, वाराणसी १, १९६२

• २. द्रष्टव्य : सुभाषित रत्न भांडागारम्; चौखंभा संस्कृत सेरीज, प्रहेलिका, अंतर्लापिका अंश ।

अर्थात्- सीमन्तिनियों में कौन शांता है? (सीता ।) गुणों से उत्तम कौन राजा हुआ? (रामः-राम ।) विद्वानों के द्वारा कौन सर्वदा वंच्य है। (विद्या ।) यहाँ उत्तर कहा गया है, पर जाना नहीं जाता (पता नहीं चलता ।)

कं संजधान कृष्णः का शीतलवाहिनी गड्गा ।
के दारपोषणरतः कं बलवन्तं न बाधते शीतन् ॥

अर्थात्- किसको कृष्ण ने मारा? (कंसः-कंस को ।) कौन शीतलवाहिनी गंगा है? (काशी-तल वाहिनी-गड्गा: काशी तलमें बहनेवाली गंगा ।) कौन दार पोषण में (स्त्री-पोषण) रत है, लीन है? (केदार पोषणरताः-धान के खेत के पोषण में लीन मनुष्य ।) कौन बलवान् है जिसको जीत बाधा नहीं पहुँचाता? (कंबलवन्त, कंबलवान्-कंबलयुक्त मनुष्य को ।)

तरुण्यालिङ्गितः कण्ठे नितंबस्थलमाश्रितः ।
गुरुणां सन्निधाने ४ पि कः कूजति मुहुर्मुहुः ॥

(ईपद्वन्द्वन्द्वलपूर्णकुम्भ : इति उत्तरम् ।)

अर्थात्- तरुणी (स्त्री) के साथ आलिंगित, कंठ में लिपटा हुआ, नितंब प्रदेश में आश्रित गुरुजनों के समीप भी कौन बार-बार कूजन करता है? उत्तर है, कुछ बन्ध प्रदेश के जल से भरा हुआ घड़ा।

तरुणी बन्धप्रदेश के जल से भरे हुए घड़े को नितंब प्रदेश के समीप, काँख में रखकर ले चल रही है, गुरुजन समीप हैं और घड़े का पानी छलक-छलककर बार-बार आवाज़ कर रहा है—यह चित्र ध्यान देने पर सामने आता है।

खुसरो ने हिंदी या हिंदवी में अंतर्लापिका या वहिलापिका के ढंग पर ही पहेलियाँ हमारे सामने रखीं। कुछ एक उदाहरण :

अंतर्लापिका :

इयाम बरन और दाँत अनेक । लचकत जैसी नारी ।
तोनों हाथ से खसरो खीचि । और कहे तू आ री ॥

(आरू)

बाला था जब सबको भाया । बढ़ा हुआ कछु काम न आया ।
खुसरो कह दिया उसका नाँव । अर्थ करो या छोड़ो गाँव ॥

(दिया)

सावन-भादो बहुत चलत हैं भाघ पूस में थोरी ।
अमीर खुसरो यों कहे तू बूझ पहेली मोरी ॥

(मोरी)

बीसों का सिर काट लिया । ना मारा ना खून किया ॥

(नाखून)

एक नार तरवर से उतरी मो तो जनम न पायो ।
बाँप को ठाँव जो वासो पूछ्यो आधो नाँव बतायो ॥
आधो नाँव बतायो खुसरो कोन देस की बोली ।
वाको नाँव जो पूछ्यो मैंने अपने नाँव न बोली ॥

(न बोली, निबोली)

पहेलियों के सकेत यहाँ स्पष्ट हैं और उनके उत्तर पहेलियों के अंदर ही विद्यमान हैं ।

बहिर्लापिका :

एक थाल मोती से भरा । सबके सिर पर औंधा धरा ।
चारों ओर वह थाली फिरे । मोती उससे एक न गिरे ॥

(आकाश)

आगे-आगे बहिना आई, पीछे पीछे भइया ।
दाँत निकाले बाबा आए, बुरका ओढ़े मइया ।

(भुट्ठा)

खेत में उपजे सत्र कोई खाया घर में होवे घर खा जाए ।

(फट)

नई की ढीली पुरानी की तंग ।
बुझो तो बुझो, नहीं, चलो मेरे संग ।

(चिलम)

दानाई से दाँत उस पै लगाता नहि कोई ।
सब उसको भुनाते हैं पै खाता नहि कोई ।

(रुपया)

बात की बात ठोली की ठोली ।
मरद की गाँठ औरत ने खोली ॥

(ताल)

चार अंगुल का पेड़ सवा मन का पत्ता ।
फल लागे अलग-अलग पक जाए इकट्ठा ॥

(चाक)

एक कहानी मैं कहूँ, तू सुन ले मेरे पूत ।
बिना परों वह उड़ गया, बाँध गले मैं सूत ॥

(गुड़ी)

उदाहरणों से यह बात साफ है कि पहेली का जो सामान्य कोशगत अर्थ है—किसी की बुद्धि की परीक्षा लेने के लिए बाम का एक प्रकार का प्रश्न, वाक्य या वर्णन या जिसमें किसी वस्तु का भ्रामक या टेढ़ा-मेढ़ा लक्षण देकर उसे बूझने या अभीष्ट वस्तु का नाम बताने को कहते हैं—वह यहाँ पूर्ण रूप से बैठता है। पहेलियों का उत्तर निश्चय ही उपस्थित नहीं है पर संकेत एवं सूचना के आधार पर अभिप्राय को प्राप्त करना यहाँ किलप्ट कल्पना नहीं कहा जा सकता ।

खुसरो ने दो सखुना (कहीं तीन सखुना भी) पहेली के विशेष प्रकार के रूप में प्रस्तुत किए ।

प्रश्न

अनार क्यों न चक्खा ? बजीर क्यों न रक्खा ?	दाना न था
गोशत क्यों न खाया ? डोम क्यों न गाया ?	गला न था
पंडित प्यासा क्यों ? गधा उदास क्यों ?	लोटा न था
जोगी क्यों भागा ? ढोलकी क्यों न बजी ?	मढ़ी न थी
सितार क्यों न बजा ? औरत क्यों न नहाई ?	परदा न था
घर क्यों अंधियारा ? फकीर क्यों बिगड़ा ?	दिया न था
ब्राह्मण क्यों न नहाया ? धोविन क्यों मारी गई ?	धोती न थी
संबोसा क्यों न खाया ? जूता क्यों न चढाया ?	तला न था
रोटी जली क्यों ? घोड़ा अड़ा क्यों ? पान सड़ा क्यों ? फेरा न था	

उदाहरणों में सखुन या सुखुन बात, वचन, उक्ति की सख्ता दो या तीन ने के कारण दो सखुना (तीन सखुना) नाम युक्तियुक्त प्रतीत होता है । कवि वौद्धिक व्यायाम करवाकर यह मनोरंजन या मनोविनोद वरना चाहता है ।

खुसरो ने फारसी और हिंदी दोनों भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करते हुए भी दो सखुना लिखे हैं :-

सौदागर, वचः रा चे मी बायद,	१
बूचे को क्या चाहिए?	उत्तर-दो कान
कूवते रुह चीस्त ।	२
प्यारी को कब देखिए ?	उत्तर-सदा
शिकारी रा चे मी बायद	३
मुसाफिर को क्या चाहिए ?	उत्तर-दाम

१. व्यापारी को क्या चाहिए ? बूचा उसे कहते हैं जिसके कान कटे हुए हैं । उर्दू-फारसी में दूकान और दोकान एक तरह से लिखा जाता है ।

२. प्राण का बल क्या है ? फारसी में सदा का अर्थ आवाज शब्द है और हिंदी में सर्वदा है ।

३. व्याध को क्या चाहिए ? दाम का अर्थ है जाति, मूल्य, उस जमाने का एक सिक्का आदि ।

[द्रष्टव्य : कविता कौमुदी : रामनरेश त्रिपाठी, भाग १. नवनीत प्रकाशन, बंबई, प्र. सं १९१७, अष्टम संस्करण १९५४ में संकलित, पृ. १३३-४० तथा खुसरो की हिंदी कविता, संपादक : श्यामसुंदरदास ; संकलन-संपादक : व्रजरत्नदास, ना. प्र. स. काशी, संवत् १९७८]

दर जहन्नुम चीस्न	
कामी को क्या चाहिए ?	उत्तर-नार
दर आईनःचे मी वीनद,	
दुखिया को क्या न कहिए ?	उत्तर-रु
माशूक रा चे भी बायद कर्द,	
हिंदुओं का रख तौन है ?	उत्तर-राम

हिंदी के दो सखुनों की तरह यहाँ भी वौद्धिक चमत्कार एवं आनंद प्राप्त होता है, विवाद की बात यहाँ नहीं बतलाई जा सकती।

खुसरो द्वारा प्रस्तुत निसबतों में भी पहेती का आनंद आता है। निसबत का अर्थ है संबंध, बराबरी। कुछ एक उदाहरणः

हलवाई और दवकई में क्या निसबत है ? ^१ उत्तर-कंदा
हलवाई और बजाज „ „ „ ? ^२ उत्तर-कंद
बजाज और फल „ „ „ ? ^३ उत्तर-किमरख
आम या शलजम और कपड़े „ „ „ ? ^४ उत्तर-जाली

१. नरक में क्या है ? नार का अर्थ आग और स्त्री दोनों है।
२. आईने में क्या दिखता है ? फारसी में रु का अर्थ मुख है और यह और रो अर्थात् रोना उर्दू-फारसी में एक प्रकार से लिखा जाता है।
३. माशूक को क्या करना चाहिए ? राम शब्द का फारसी में अर्थ है आज्ञाकारी।
४. कंदा-खानेवाला, और कुंदा जिससे दवकई तबक पीटते हैं, उर्दू फारसी में एक ही प्रकार लिखा जाता है।
५. कंद या फारसी में चीनी अर्थ है और कपड़ों पर चमक के लिए कुंद कराया जाता है।
६. किमरख एक कपड़ा है जिसे अब लंकिलाट या लांग क्लाथ कहते हैं।
७. अर्थ स्पष्ट है।

[द्रष्टव्य : खुसरो की हिंदी कविता, निसबतें अर्थात् संबंध, बराबरी अंश]

मकान और अनाज में क्या निसवत है ? ६ -कँगनी
 मुश्क और आदमी „ „ „ ? ९ -दहाँ

खुसरो की कई मुकरियाँ भी पहेनी के रूप में विचार का विषय बन सकती हैं। मुकरी का अर्थ है कहकर मुकर जाना - पहेली के रूप में कुछ कहना और मुकरकर सही उत्तर कह देना। उदाहरणार्थ,

बरस बरस वह देस में आवे । मुँह से मुँह लगाए रस प्पावे ॥
 वा खातिर में खरचे दाम । ऐ सखी साजन ना सखी आम ॥

○

सोभा सदा बढ़ावन हारा । आँखों ते छिन होत न प्पारा ॥
 आए फिर मेरे मन रंजन । ऐ सखी साजन ना सखी अजन ॥

○

कस के छाती पकड़े रहे । मुँह से बोले बात न कहे ॥
 ऐसा है कामिनि का रँगिया । ऐ सखी साजन ना सखी अँगिया ॥

○

आँख चलावे भौं मटकावे । नाच कूद के खेल खिलावे ॥
 मन में आवे ले जाऊ अंदर । ऐ सखी साजन ना सखी बंदर ॥

○

मो खातिर बजार से आवे । करे सिंगार तब चूमा पावे ॥
 मन विगड़े नित राखत मान । ऐ सखी साजन ना सखी पान ॥

○

८. अन्न में ककुनी और मालकँगनी होती है। मकान में गोल खंभे के ऊपर और नीचे जो उसी में निकला हुआ पतला छज्जेदार गोला चारों ओर रहता है उसे कँगनी कहते हैं। मंदिर के नुकीले भाग में जिस पर कलश रक्खा जाता है एक पत्थर का गोला रहता है जिसे आँवला कहते हैं। यह जिस भाग पर जमाया जाता है उस पत्थर के चौकोर टुकड़े को भी कँगनी कहते हैं।

९. मुश्क का अर्थ खुसरो ने कस्तूरी नहीं लिया है, वह मृग लिया है जिससे कस्तूरी निकलती है। फारसी में दहाँ शब्द का अर्थ है मुख, पर इस प्रकार के शारीरिक अवयवों की समानता मृग और मनुष्य में बहुत-सी बहलाई जा सकती है। मुश्क अर्थात् मृग-मद और आदमी में नाभि की समानता ठीक जान पड़ती है।

वा बिन मो को चैन न आवे । वह मेरी तिस आन बुझावे ॥
है वह सब गुन बारह बानी । ऐ सखी साजन ना सखी पानी ॥

○

आप हिले वह मोय हिलावे । वाका हिलना मो को भावे ॥
हिल हिल के वह हुआ नसंखा । ऐ सखी साजन ना सखी पंखा ॥

○

लौँडी भेज उसे बुलवाया । नंगी होकर मैं लगवाया ॥
हमसे उससे हो गया मेल । ऐ सखी साजन ना सखी तेल ॥

○

आप जलै औ मोय जलावे । पी पीकर मोरे मुँह आवे ।
एक मैं अब मारूँगी मुक्का । ऐ सखी साजन ना सखी हुक्का ॥

अंगो मेरे लपटा आवे । वाके खेल मोरे मन भावे ।
कर गहि कुच गहि गहे मोरि माला । ऐ सखी साजन ना सखी बाला ।¹

उदाहरणों से स्पष्टतः पता चलता है कि खुसरो का ध्यान संस्कृत के अपहृतति अलंकार का चमत्कार उत्पन्न करना है और वह पहेली के समान अपने कथ्य को शोपनीय बनाकर रखना चाहते हैं ।

विश्लेषण की दृष्टि से खुसरो की हिंदी पहेलियाँ खुसरो को बहुज एवं बहुदर्शी सिद्ध करती हैं । दैनंदिन व्यवहार में आनेवाली चीजों ने— जैसे आग, दिया और वत्ती (वाती), कोयला, लोटा, दर्पण, आइना, आरसी, चक्की, चरखा, चिलम, केंची, जूता इत्यादि ने— जबरदस्ती सोचने के लिए बाध्य किया और खुसरो ने पहेलियों के रूप में इनपर प्रकाश डाला । खुसरो अपने में सिमटकर रहनेवाले जीव नहीं थे । वह राज-दरबार में रहे पर उन्होंने खुले संसार को अधिक महत्व दिया । पाश्वेजगत के आकाश, बादल, फुआरा (फञ्चारा), मोरी (नाली), कुआँ इत्यादि इनका वर्ण बने या पशुपक्षियों में घोड़ा, मोर, मैना, बगुला, भौंरा, बरु पक्षी और उसका धोंसला, कीट पतंग, मक्खी, मच्छर, बीरबहूटी, फल-फूल में आम, जामुन, फूट, भुट्ठा, पान, चूड़ा, इत्यादि पर खुसरो ने रचनाएँ प्रस्तुत कीं, पहेलियाँ लिखीं । बच्चीं, तलवार, बंदूक, ढाल इत्यादि अस्त्रशस्त्र पर खुसरो का ध्यान गया । साजशूंगार शैवं मनोरंजन की चीजों से इन्हें परहेज़ नहीं रहा । फलतः इनकी पहेलियों में

१. द्रष्टव्य : खुसरो की हिंदी कविता, मुकरियाँ—अंश ।

मोती, नथ, वाला, हार, बासुनी, (बाँसुरी), झूला, ढोल, गुड़ी, चौसर, अनार आतिशवाजी, अंजन के दर्शन हम करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि खुसरो ने दूर की कोँड़ी लाने के बदले अपने ईर्द-गिर्द की चीजों को अपनी रचनाओं का आधार बनाना उचित समझा और बनाया भी।

खुसरो के सामने संस्कृत साहित्य में प्रस्तुत प्रहेलिका के विभिन्न उदाहरण होंगे, भले ही खुसरो ने उनको आत्मसात् नहीं किया हो या अनुवाद नहीं बनाया हो। पर प्रभाव की दृष्टि से खुसरो की पहेलियों पर संस्कृत की पहेलियों का प्रभाव बतलाया ही जा सकता है। संस्कृत की पहेलियों के कुछ एक उदाहरण यहाँ विचारार्थ प्रस्तुत हैं—

एक चक्षुर्न कोकाऽय विलमिच्छन्न पश्चगः ।
क्षीयते वर्धते चैव न समुद्रो न च चंद्रमाः ॥

(सूचिका-सुई)

अर्थात्-एक चक्षु है, एक आँख युक्त है पर काक (लैंगड़ा, नीच, काना) नहीं है रेंगकर चलनेवाला सांप नहीं है यद्यपि विल की इच्छा करता है। क्षीण (छोटा) होता है, बढ़ना है पर न समुद्र है, न चंद्रमा है।

कृष्णमुखी न मार्जारी द्विजित्वा न च सर्पिणी ।
पञ्चभत्री न पांचवाली यो जानाति स पण्डितः ॥

(लेखनी)

अर्थात्—कृष्णमुखी है, काले मुखवाली है पर मार्जारी, विलाडिन नहीं द्विजित्वा-दो जीभ वाली है पर सर्पिणी नहीं, पंचभत्री (पांचभत्तिवाली अर्थात् स्वामी) है पर पांचवाली, द्रोपदी नहीं। जो इसको जानता है वह पंडित है।

वृक्षाग्रवासी न च पक्षिराजस्त्रिनेघारी न च शूलपाणिः ।
त्वचाग्रस्त्राधारी न च सिद्ध योगी जले च बिभ्रन्न घटो न मेघ ॥

(नारिकेलफलम्)

अर्थात्-वृक्ष के अग्रभाग पर वास करता है पर पक्षीराज गरुड़ नहीं है। लीन नेत्र को धारण करनेवाला है पर शूलपाणि शंकर नहीं है। त्वचा का वस्त्र धारण करता है पर सिद्धयोगी नहीं। जल धारण करता है पर न घड़ा है न मेघ है।

अपदो दूरगामी च साक्षरो न च पण्डितः ।
अमुखः स्फुटवक्ता च यो जानाति स पण्डितः ॥

(पत्रम्)

○

अर्थात्—पद (पैर) नहीं रहने पर भी दूर जानेवाला है, अधरयुक्त है पर पण्डित नहीं, मुखरहित है पर स्फुट वक्ता है। जो इसको जानता है वह पण्डित है।

खुसरो की कई मुकरियाँ बहुत कुछ इन्हीं संस्कृत प्रहेलिकाओं से प्रभावित हैं। बूझ पहेलियों और ब्रिनबूज पहेलियों पर भी संस्कृत की प्रहेलिकाओं का प्रभाव दिखलाया जा सकता है; यथा,

सब्ज रंग और मुख पर लाली । उस पीतन गल कंडी काली ।
भाव सुभाव जंगल में होता । ऐ सखी साजन ना सखी तोता ॥

○

नंगे पाँव फिरन नहिं देत । पाँव से मिट्टी लगन नहिं देत ॥
पाँव का चूमा लेत निपूता । ऐ सखी साजन ना सखी जूता ॥

○

टट्टी तोड़ के घर में आया । अरतन बरतन सब सरकाया ॥
खा गया पी गया दे गया बुत्ता । ऐ सखी साजन ना सखी कुत्ता ॥

○

पानी में निस दिन रहे जाके हाड़ न मास ।
काम करे तलबार का, फिर पानी में बास ॥

○

(कुम्हार का डोरा)

अंबर चढ़े न भू गिरे, घरति धरे न पाँव ॥
चाँद सूरज ओज्जल बसे, वाका क्या है नाँव ॥

(गूलर का भुंगा यां कीङ्गा)

○

एक जानवर रंग रंगीला, बिन मारे वह रोवे ॥
उसकी माँ पर तीन तिलाकें, बिना बताए सोवे ॥

(मोर)

नारी में नारी बसे, नारा में नर दोब ।
दो नर में नारी बसे, बूझे बिरला कोय ॥

(नथ),

उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि खुसरो ने संस्कृत के प्रहेलिका साहित्य से अवसरानुकूल लाभ उठाया है ।

संस्कृत में प्रहेलिका या पहेली का जो लक्ष्य है मनरंजन, मनोविनोद, ज्ञानवर्द्धन इत्यादि हिंदी की पहेली से उसका विरोध नहीं है । खुसरो की पहेलियाँ भी अपवादात्मक नहीं हैं । काव्यादर्श में क्रीड़ा गोष्ठी, दिनोद, यज्ञकार्य, स्फुट मंत्रणा के अवसर पर व्यामोह (दूसरों को मोहित करना) आदि के लिए प्रहेलिका को उपयोगी बतलाया गया है :-

क्रीड़ा गोष्ठी विनोदेषु तज्ज्ञैराकीर्णमंत्रणे ।
पर व्यामोहे चापि सोपयोगा प्रहेलिकाः ॥

हिंदी में प्रहेलिका या पहेली की परंपरा चूंकि संस्कृत साहित्य से आई सो संस्कृत-साहित्य की प्रहेलिकाओं का जो उपयोग बतलाया गया वह यहाँ भी मान्य है । खुसरो की पहेलियों में प्रश्नोत्तर का अंश है, अंतर्लापिका-बहिर्लापिका का उपयोग है, अपन्हुति का चमत्कार है विषयवैविध्य है लक्ष्यवैविध्य है । निससंदेह विभिन्न भाषा एवं साहित्य के अध्ययन, चितन, मनन आदि का प्रभाव खुसरो की पहेलियों में दिखलाई पड़ता है । खुसरो कला के लिए उपासक नहीं दिखते अपिनु उपयोगितावादी दृष्टि से वह प्रत्येक दृश्य, प्रत्येक घटना प्रत्येक व्यक्ति को दंखना चाहते हैं । खुसरो की पहेलियाँ वस्तुतः मनोरंजन, मनोविनोद का जितना आधार हैं उतना ज्ञानवर्द्धन, भाषाशास्त्रीय अध्ययन के लिए भी महत्वपूर्ण कहीं जा सकती हैं ।

● ● ●

अमौर खस्सरो का भारतीय भाषा सर्वेक्षण

श्री देवीसिंग चौहान

गुजरात-देशस्थ जैन महापंडित हेमचंद्र सूरि आधुनिक आर्य भारतीय भाषाओं की जन्मदात्री अपभ्रंश के विद्वान् थे। उनका कालखण्ड शक १०१० से १०९४ है। उनके समय के दक्खिणी हिंदी तथा अन्य आधुनिक आर्य भारतीय भाषाओं के ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं। कुछ वाक्य या वाक्यखंड प्राप्त हैं। हेमचंद्र के पश्चात् की शताविदियों में रचेअन्य भाषाओं के कुछ ग्रंथ प्राप्त हैं। अमीर खुसरो इसी शती में पैदा हुए। उनका जन्म शक ११७५ में और देहांत भाद्रपद १२४७ में होना माना जाता है। मराठी भाषा के सन्त कवि नामदेव भी (शक ११८० से १२७५) इसी कालखण्ड में अपना साहित्य निर्माण कर रहे थे। उनकी हिंदी पदावली भी प्राप्त है।

श्रेष्ठ मराठी साहित्यिक सन्त ज्ञानेश्वर (शक ११६४—१२१८) नामदेव के समसामयिक थे। उसी काल में म्हाइंभट, अर्थात् महेन्द्र पंडित ने (देहान्त शक १२१० के बाद) मराठी में अपने दो-तीन गद्य-ग्रंथों का निर्माण किया था। इसी आधुनिक आर्य भारतीय भाषाओं के प्रारंभिक उद्ग्रेक की अवस्था में अमीर खुसरो का प्रादुर्भाव हुआ था।

अमीर खुसरो को दीर्घायु प्राप्त रही। उन्होंने अपनी युवावस्था में ही साहित्य-निर्माण आरंभ किया था और वह अन्त तक लिखते रहे। उनका एक इतिहास ग्रंथ 'तुगलकनामा' (काव्य) अधूरा ही रह गया था, जिसको हयाली नामक कवि ने जहाँगीर ब्रादशाह के काल में पूरा किया। उन्होंने अपना पहला दीवान शक १२०४ (हिजरी ६८१) में पूरा किया था, मानो उनकी साहित्य-सेवा ४५ वर्षों तक होती रही। उनका केवल फारसी साहित्य ही प्राप्त है। उनके पाँच दीवान, पाँच इतिहास-रूप कथाकाव्य और मस्तवियाँ तथा निजामी गंजबी के अनुकरण पर निर्मित पाँच प्रेमाख्यान का काव्य-मस्तवियाँ प्राप्त हैं। तात्पर्य यह कि खुसरो का बृहत् साहित्य है और प्राप्त भी है। उन्होंने दिल्ली भाषा, अर्थात् खड़ी बोली में भी प्रसंगवशात् काफी रचना की है। लेकिन, उसका संग्रह नहीं किया गया। जो कुछ स्क्रूट अंश उपलब्ध हैं, उनपर आधुनिकता का पुट चढ़ा हुआ है। इसलिए वह भाषाशास्त्रीय अध्ययन के लिए निरूपयोगी है।

भाषाशास्त्र-संबंधी अध्ययन के लिए खुसरो की विशेषता यह है कि उन्होंने अपनी एक काव्येतिहास कृति 'नवआकाश या नुह-सिपिहर' के अध्याय (सर्ग ३, अध्याय ५) में भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया है। भारतीय भाषाओं के इस सर्वेक्षण का उल्लेख 'भारत के भाषा-सर्वेक्षण' में जाँर्ज ग्रियर्सन ने आरंभ (वैत ७१, ७२) में ही किया है। इसमें खुसरो ने सिन्धी (सिंधो), लाहोरी (पंजाबी), कश्मीरी, कबर, घोर समन्दरी, तिलंगी (तेंगी, तेलुगु), गुजर (गुजराती), मअबरी (कारोमण्डल : समुद्रतट की तमिज), गोरो (गोडो-रशिवमो बंगला), बंगाल (बंगला), अबद (अवधी पूर्वी हिंदी) और दिल्ली और उसके आसपास की भाषा, इन सभी भाषाओं का उल्लेख किया है।

भारतीय संविधान के आठवें परिशिष्ट में १४ भाषाओं का उल्लेख है। उनमें उर्दू केवल हिंदी की एक शैली है। शेष १३ भाषाओं में से अमीर खुसरो ने नौ भारतीय भाषाओं का उल्लेख अपने इन भाषा-सर्वेक्षण में किया है। उनकी बतलाई हुई कबर-भाषा का शुद्ध स्वेत अज्ञात है। उन्होंने मराठी, मलयालम

उड़िया और असमी भाषाओं का उल्लेख नहीं किया है। आश्चर्य की बात यह है कि महाराष्ट्र देवगिरि में आने के बावजूद खुसरो ने मराठी भाषा का उल्लेख नहीं किया।

जॉर्ज ग्रियर्सन ने खुसरो के इस महत्वपूर्ण 'भाषा-सर्वेक्षण' का उल्लेख अपने ग्रंथ के प्रथम भाग में, आरंभ में ही किया है। इसके विस्तारपूर्ण उद्धरणों से मालूम होता है कि ग्रियर्सन ने 'नुह-सिपिहर' की मूल वस्तु नहीं देखी और उन्होंने इलियड्कृत 'भारत के इतिहास' के उद्धरणों पर समाधान कर लिया है। शायद इसी कारण से ग्रियर्सन के कई विधान खुसरो के मूल कथनों से अलग और भ्रष्ट लगते हैं।

ग्रियर्सन ने सिधी को हिंदी बतलाया है, जिसकी चर्चा की आवश्यकता नहीं। सिधी भाषा खुसरो के काल में ही नहीं बल्कि आज भी जीवित है। उसका भाषा-शास्त्रीय अध्ययन भी हो चुका है। सब जानते हैं कि यह आर्य भारतीय कुल की भाषा है। हिंदी से उसको मिलाने की कोई आवश्यकता नहीं। खुसरो ने केवल अवधी और दिल्ली के उल्लेखों के आधार पर हिंदी का उल्लेख सकेतित किया है।

ग्रियर्सन का यह कथन दबिएः "खुसरो निखते हैं—'यह हिंदी की भाषा है।' ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ हिंदी से वास्तव में, खुसरो का संस्कृत से तात्पर्य है, न कि उस भाषा से, जिसे हम आज इस नाम से अभिहित करते हैं।"

यह वाक्यांश कि 'यह हिंदी की भाषा है' खुसरो के निम्नांकित बैत का सारांश मानूम होता है :

हिंद हमीन काइदह दारह ब-सुखनु ।

हिंदई बूद अस्त दर आयामे-कुहन ॥

इस बैत का अर्थ साफ है कि फ्रांसी के समान ही भरत में भाषाएँ प्रगति पर हैं। हिंदुई भाषा प्राचीन काल में थी और आज भी है। खुसरो ने हिंदुई शब्द का उपयोग किया है, न कि हिंदी का।

खुसरो ने जिन भाषाओं का उल्लेख किया है, उनमें केवल अवधी और दिल्ली ही ऐसी दो भाषाएँ हैं जो उत्तर भारत के हिंदी-भाषी प्रदेश का प्रति निर्धित्व

करती हैं। खुसरो के इस मनोभाव का विशेष संकेत यह है कि इस प्रदेश की हिंदी-बोलियों को वह एक ही भाषा से उत्पन्न समझते थे। यह उल्लेख स्पष्ट और प्रत्यक्ष नहीं है, तो भी ब्रज, राजस्थानी, कन्नौजी, मैथिली आदि कई विशेष महत्त्व की बोलियों के अनुल्लेख से भी विशेष संकेत प्राप्त होता है। इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि खुसरो के मन में भी तमाम बोलियों के संबंध में वह कम अधिक भेदों के साथ, वास्तव में, एक ही कुल की सुकन्याएँ होने का तथ्य प्रच्छन्न रूप से विद्यमान था।

खड़ी बोली, अर्थात् खुसरो की देहली की रचना का आरम्भ तो उत्तर भारत में ही हुआ था। स्वयं अमीर खुसरो ने खड़ी बोली में रचना की है। जो कुछ भी उनकी रचनाएँ पहेलियों आदि के रूप में प्राप्त हैं, वह जनसाधारण के हाथों नवीनीकरण का शिकार बनी हुई हैं, अर्थात् भाषाशास्त्रीय अध्ययन के लिए निरूपयोगी हैं। खुसरो के पूर्ववर्ती एक विद्वान् मसउद की ओर से दीवान् हिंदुई में लिखे जाने की जानकारी मिलती है। उसका काल शक ११५० के लगभग है। परन्तु मसउद की यह रचना अप्राप्त है। सारांश यह कि खुसरो के समसामयिक या पूर्ववर्ती किसी लेखक की रचना खड़ी बोली में अप्राप्त है।

खुसरो ने फारसी-भाषा की प्रगति और प्रदेश का विस्तार बतलाते हुए कहा है कि कालान्तर से दरी-भाषा भी एक प्रकार की फारसी होकर रह गई। इससे सन्देह होता है कि दरी वास्तव में केवल फारसी नहीं है। तथ्य यह है कि दरी और फारसी दोनों इण्डो-इरानियन आर्य भाषाएँ हैं। फारसी का विकास अधिकतर शीराज और उसके आसपास के प्रदेश से हुआ। दरी का कार्य आँकड़स नदी के आसपास बलख, बदखशान और बुखारा है। तात्पर्य यह है कि शीराज अरबस्थान आदि के समीप है। परिणामतः इण्डो-इरानियन फारसी पर अन्य आर्यभाषेतर प्रभावों की सम्भवनीयता अधिक है। दरी कॉस्पियन समुद्र के पूर्वी प्रदेशों में होने के कारण उसमें ऐसे प्रभावों का कम अवसर है। इसी कारण खुसरो ने कहा है कि फारसी ने राजकीय विस्तारों के साथ जब हाथ-पैर फैलाए तब दरी-भाषा प्रभावित हुई। वह इतनी प्रभावित हुई कि गोया वह एक प्रकार की फारसी ही बन गई।

खुसरोकालीन फारसी-भाषा वास्तव में विशाल फारसी-भाषा की दरी बोली के समान थी। विशाल फारसी-भाषी क्षेत्र में से केवल मावरा-उन्नहर प्रदेश में वह शुद्ध स्वरूप में प्रयुक्त होती थी। खुसरो ने बतलाया है, यद्यपि फारसी-भाषा ईरान में पैदा हुई, लेकिन वह केवल मावरा-उन्नहर

प्रदेश ही में शुद्ध रहने पाई थी। अन्य प्रदेशों में उसकी शुद्धता कायम रहने नहीं पाई थी।

खुसरो के काल में आर्यन बीज या खिवा के आसपास की भाषा शुद्ध स्वरूप में थी, उसको ही दरी बोली कहा जाता है। दरी-भाषा स्टीनगास के कोश के अनुसार बलख-जो ऑक्सस नदी पर स्थित है, बदखशान, बुखारा आदि प्रदेशों में प्रयुक्त होती है। फारसी की यह एक बोली है। खुसरो ने कहा है कि यद्यपि फारसी ईरान में पैदा हुई, किन्तु वहाँ पर उसका स्वरूप शुद्ध नहीं रहा। उसका शुद्ध रूप तो दरी के रूप में मावरा-उन्नहर, अर्थात् बलख-बुखारा आदि प्रदेशों में पाया जाता है।

एक सच्चे भाषाकोविद और साहित्यिक के समान खुसरो ने हिंदी-शब्दों का भी खुले दिल से प्रयोग किया है। जहाँ कहीं आवश्यकता प्रतीत हुई, उन्होंने हिंदी शब्द प्रयुक्त किए-पाइक (सं. पादिक से), अच्छू (सं. अच्छ), अलंग (सं. अलंध्य), चन्दन, दमामा, कपि, कोडह (कौड़ी), घाटी (पहाड़ का माथा) जैसे हिंदी-शब्दों का उन्होंने प्रयोग किया है। सावन्त शब्द भी प्रयुक्त हुआ है, जो संस्कृत सामन्त का अपभ्रंश-रूप और नित्य प्रयुक्त है। तेजो शब्द, जो मूलतः अरबी ताजी (घोड़ा) है, खुसरो के हाथों पुरानी भारतीय परम्परा के अनुसार प्रयुक्त हुआ है। ताजी विशिष्ट प्रकार का घोड़ा है, जिसकी माँग भारत में प्राचीन काल से रही है। आधुनिक आर्य भारतीय भाषाओं में वह तेजी के रूप में प्रारम्भ से ही प्रयुक्त होता आया है। वह मराठी और हिंदी की अवधी आदि बोलियों में नित्य प्रयुक्त होता रहा है। भारतीय परम्परा में ताजी अपभ्रष्ट होकर अधिक परिचित रूप में तेजी होकर व्यवहृत हुआ है।

खुसरोकृत भाषा-सर्वेक्षण-

इस्बाते-गुप्ते हिंद ब-हुज्जत कि राजिअ अस्त
बर पारसी व तुर्की जि अल्फाजे-खुशगवार ॥ १ ॥

भारत की भाषा के, अपनी मनोहारी शब्द-रचना के कारण फारसी और तुर्की भाषाओं से श्रेष्ठतर होने की बात को अब सिद्ध किया जाता है।

गश्त चू दर इश्ल्म मुकर्रं सुखनम्
दर सुखने-हिंद कनू सिक्का जनम् ॥ २ ॥

जस प्रकार (भारत के) प्रतिष्ठापित ज्ञान के सम्बन्ध में मेरी वाणी
प्रसृत हो रही थी, अब मैं भारत की वाणी के सम्बन्ध में सिक्का चलाता हूँ ।

मन ब-जबान् हाए-कसान् बेशतरी
कर्दा-अम अज तबअ शिनासा गुजरी ॥ ३ ॥

कई भाषाओं से मैंने स्वयं बहुत कुछ परिचय प्राप्त कर लिया है ।

दानम् व दर्याफिता व गुफता हमम्
जुस्तओ-रोशन शुदा जान बेशो-कमम् ॥ ४ ॥

उन सबके बारे में मैंने जानकारी प्राप्त की है, उन्हें मैं बोलता और जानता हूँ । मैंने उनकी खोज की है और मैं उनको कम-अधिक जानता हूँ ।

दर अरबी जाबितएँ हस्त कवी
नहूओ-इल्ल ता ब-खताहा नरवी ॥ ५ ॥

अरबी-भाषा में एक प्रकार की सुबढ़ नियमावली बनी हुई है । उसका व्याकरण और वाक्यविन्यास सुबढ़ है । इस कारण कोई गलतियाँ कर उससे दूर नहीं जा सकता ।

साख्तां दर तर कजा नीज अहले हुनर
सर्फए-सर्फाँ-लुगत जेरो-जबर ॥ ७ ॥

उस (भाषा) की बनावट पेचीदी है । इस कारण विद्यावन्त उसके व्याकरण और शब्दावली के व्यवहार में नीचे-ऊपर हो जाते हैं ।

हस्त सिह गुफ्तार कि बर रूए जमीन
गश्तह ब-इज्जत ढू गुहरहाए-समीन ॥ ८ ॥

इस पृथ्वीतल पर ऐसी तीन भाषाएँ हैं कि जिनसे मूल्यवान रत्नों की प्रतिष्ठा प्रसृत हो गई है ।

हर दो सिह जादह जि मुअयिन महले
लेकिनश अंदर हमह आलम अमले ॥ २५ ॥

इनमें से दो-तीन निश्चित प्रदेश में पैदा हुई हैं, लेकिन उनका प्रयोग समस्त दुनिया में होता है ।

हस्त नुखुस्तश अरबी कांदर अरब
आदन व शुद हर हमद रा जेवरे-लब ॥ २६ ॥

प्रथमतः अरबी ऐसी भाषा है कि अरब देश के अन्दर जनसाधारण के होंठ का भूपण बनी हुई है ।

शुद सुखुनश खासगियान रा चून जबर
आम्मह गिरियत व ब-जहान गश्त समर ॥ १० ॥

जैसे-जैसे उस भाषा का प्रभाव श्रेष्ठ वर्ग में बढ़ता गया, जनसाधारण ने भी उसको अपनाया और उसकी स्मृति देशों में फैल गई ।

हिंद हमीन काइदह दारद ब-सुखुन
हिंदुई बूद अस्त दर अयामे कुहन ॥ ५९ ॥

इसी प्रकार, भारत में भाषा के विभिन्न-नियम बने हुए थे । हिंदुई भाषा का 'अस्तित्व प्राचीन काल में था और आज भी पाया जाता है ।

सिंदीओ-लाहोरीओ-कश्मीरीओ कबर
घोर समन्वरी-ओ-तिलंगी ओ गुजर ॥ ७१ ॥

मअबरी ओ-गौरी ओ-बंगालो-अवद
दिल्ली ओ-पेरामनश अंदर हमह अद ॥ ७२ ॥

इन हमद हिंदवीस्त कि जि अयामे कुहन
आम्मह ब-कारअस्त ब-हर गूनह सुखुन ॥ ७३ ॥

सिंदी, लाहोरी (पंजाबी,) कश्मीरी, कबर, घोरसमुही, (कन्नड), निलगी (तेलुगु), गुजर (गुजराती), मअबरी (तमिल), गौरी, बंगाल (बँगला), अवद (अवधी), दिल्ली और उसके आसपास की सीमा के अंदर (खड़ी बोली) की सब भाषाएँ हिंदुई हैं और प्राचीन काल से हर प्रकार की वाणी के लिए जनसाधारण के काम आती रही हैं ।

लेक जबानेस्त दिगर कज-सुखनान
आन्स्त गुजीन नज्द दमह बरहमनान ॥ ७४ ॥

परंतु, इन भाषाओं से अलग एक दूसरी भाषा भी है । उसके साहित्य के कारण वह सब व्राह्मणों के पास है और चुनी हुई अर्थात् श्रेष्ठ है ।

संस्कृत नाम जि अहदे-कुहनश
आम्मह न दारद खबर अज कुन म-कुनश ॥ ७५ ॥

प्राचीन काल से उसका नाम संस्कृत है । जनसाधारण के साथ उसके 'कृष्ण मा कृष्ण' (अर्थात् व्याकरण की बारीकियों) की वार्ता नहीं है ।

हर्फ वइ आं-जा बूद अज बरहमान
व अज अदब आमूखतह दानिस्तह फुनान ॥ ८२ ॥

साहित्य का आलोड़न करने पर और विद्याकला को देखने से मालूम होता है कि अब तक का हर शब्द व्राह्मणों से पाया गया है ।

आन्स्त जबाने ब-सिपते-दुरे-दरी
अज अरबी कमतर व बस्तर जिदरी ॥ ८३ ॥

दरी-भाषा-रूपी रत्न के समान ही यह एक भाषा बनी हुई है । वह अरबी से कम और दरी से श्रेष्ठतर है ।

गरचि कि शीरीन्स्त दरी व शकरीन
जौके-इबारत कम अज्ञान नीस्त दरीन ॥ ८४ ॥

अगचें कि दरी भाषा मीठी और शक्कर के समान है, (संस्कृत भाषा) में उससे साहित्य-सर्जनशीलता किसी प्रकार कम नहीं है ।

• • •

अमीर खुसरो पर संस्कृत का प्रभाव

श्री. देवोसिंग चौहान



अमीर खुसरो मुस्लिम साहित्य संसार के महान-तम् विभूति हैं। उनका क्रियाशील जीवन आधी शताब्दी से अधिक समय का रहा, जिसके दौरान उन्होंने एक दर्जन से अधिक ऊँचे दर्जे के ग्रंथों की रचना की। ये ग्रंथ मुख्यतः साहित्यिक और परोक्ष रूप से ऐतिहासिक हैं। फारसी भाषा में उनकी दिलचस्पी क्रियाशील थी। इसके अलावा, जैसे कि स्वयं उन्होंने कहा है, अरबी-फारसी लिपि में अंकित हिंदी भाषा में भी उन्होंने बहुत-सी कविताएँ लिखी हैं। मुस्लिम विद्वानों ने इस हिंदी भाषा को रेख्ता कहा है। स्वयं खुसरो ने कहा है कि उन्हें बहुत-सी भारतीय भाषाएँ आती थीं। उन्होंने संस्कृत, फारसी, अरबी, तुर्की, हिंदी और आठ अन्य भारतीय भाषाओं का

सर्वेक्षण प्रस्तुत किया। इस लेख के लेखक ने इस सर्वेक्षण का परिचय अन्यत्र दिया है।^१ ऐतिहासिक दृष्टि से उन भाषाओं की ओर मुड़कर देखने में वे सहायक हैं। प्रायः बताया और स्वीकार किया जाता है कि खुसरो जैसे मेधावी व विद्वान् रचयिता ने फारसी साहित्य में कई नई कल्पनाओं का सूत्रपात किया। ये कल्पनाएँ परदर्ती फारसी और विशेषतः हिंदी-उर्दू के साहित्यिक विकास का अंग बन गई। वे आ बयाते-सिलसिला के, हिंदी-उर्दू की रेख्ता शैली के, हिंदी में पहेलियों की रचना के तथा अरबी-फारसी लिपि और फारसी भाषा में हिंदी-उर्दू शब्दकोश के रचयिता माने जाते हैं। खुसरो ने फारसी और उर्दू भाषाओं में जिन नवीन बातों का सूत्रपात किया वे उनके समय से सदियों पहले से ही संस्कृत और प्राकृत साहित्य में जो शिल्पविधि-संबंधी धारणाएँ प्रचलित थीं उन्हींसे ली गई थीं। इस लेख में वही बात स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

इस लेख के लेखक ने उसकी चर्चा अखिल भारतीय प्राच्य विद्या परिषद के वाराणसी में संपन्न सन १९६८ के अधिवेशन में खुसरो के आबयाते-सिलसिला शीर्षक शोध-प्रबन्ध के द्वारा प्रस्तुत की थी।^२ किरानुसा सदैन, मुफ्ताहुल-फ-ताह, नूह सिपहर और तुगलुक-नामा नामक अपनी ऐतिहासिक मस्नवियों में खुसरो ने इन आख्यान-काव्यों के अध्याय के शीर्षकों के लिए विशेष शिल्प स्वीकार किया है। हर एक अध्याय के प्रारंभ में दो पंक्तियों का एक पद दिया जाता है। अध्याय के शेष पदों से उसका छंद सर्वथा भिन्न होता है। सभी अध्यायों का प्रारंभ उसी छंद से किया जाता है। अध्यायों की शेष संहिता में प्रयुक्त छंद हर एक अध्याय में अलग अलग भी हैं और कहीं-कहीं समान भी। सभी अध्यायों के प्रारंभ में दो पंक्तियों के एक पद के द्वारा उस अध्याय का आशय संक्षेप में बताया गया है। मस्नवी में जितने अध्याय हो उतनी ही संख्या इन द्विपंचित्युक्त पदों की है, जो विशेष छंद में निवृद्ध हैं। ये सारे पद एक साथ पढ़े जाएँ तो एक छंद में एक कसीदा प्रस्तुत होता है, और उसमें समग्र काव्य ग्रंथों का सार प्राप्त होता है। तीसरी बात यह है कि कवि खुसरो कभी-कभी कहानी के कथासूत्र की घटनाओं के विकास-संबंधी अपनी सम्मतियाँ देते हैं। इस प्रकार के अभिमत कथापात्रों के चरित्र के बारे में भी हैं।

संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्योंने उपन्यास और येतिहासिक उपन्यास के लिए क्रमशः कथा और आख्यायिका शब्द प्रयुक्त किए हैं। भामह (शक ५३० में

१. डॉ. पवार अभिनंदन ग्रंथ पृ. ४०८ (Studies in Indian History) शीर्षक निवंध

२. वही

निधन), दंडी (शक ५२२ में निधन) और अन्य आचार्योंने बताया है कि आख्यायिका के उच्छवास या आश्वास (अव्याय) के प्रारंभ में एक पद होता है। भामह ने आख्यायिका की व्याख्या इस प्रकार की है :-

संस्कृतानुकूल धर्वशब्दार्थं पदवृत्तिं ना ।
गद्येन युक्तोदात्तार्थासीछत्रासाऽख्यायिका मता ॥ २५ ॥
वृत्तं आख्यायते तस्यां नायकेन स्वचेष्टितम् ।
वक्त्रं चापरदक्त्रं च काले भाव्यर्थशंसि च ॥ २६ ॥
कवेरभिप्रायकृतैः कथनैः कैश्चिदंकिता ।
कन्याहरणं संग्रामं विप्रलभ्मोदयान्विता ॥ २७ ॥

काव्यालंकार : प्रथम परिच्छेद

साहित्य-दर्पण का रचयिता विश्वनाथ अमीर खुसरो का समकालीन था। अब यह प्रामाणित हुआ है कि उस ग्रंथ का रचनाकाल शक १२३८ और १३०६ के बीच का है। विश्वनाथ ने बादशाह अल्लाउद्दीन खिलजी (मृत्यु शक १२३८) का निर्देश निम्न प्रकार किया है :

संघौ सर्वस्वहरणं विग्रहे प्राणनिग्रहः ॥
अल्लाउद्दीननुपत्तौ न संधिः न च विग्रहः ॥

भामह के सात सौ साल के बाद विश्वनाथ ने भी आख्यायिका अर्थात् ऐतिहासिक उपन्यास की रचना के बारे में वही निकष निम्न प्रकार बताया है :

आख्यायिका कथावत् स्यात् कवेषानुकीर्तनम् ।
अस्यां अन्यकवीनां च वृत्तं पद्यं कवचित् कवचित् ॥
कथांशानां व्यवच्छेदः आश्वासः इति वध्यते ।
आयविकत्रा पवक्त्राणां छंदसा येन केनचित् ॥
अन्यापदेशन आश्वासमुखे भाव्यर्थसूचनम् ।
साहित्य-दर्पण : परिच्छेद ६, श्लोक ३३४, ३३५

दक्षिखनी हिंदी के कई कवियों ने अपनी रचनाओं में इस पद्धति को प्रयुक्त किया है। मुल्ला नुस्रती (मृत्यु शक १५९६) उसे प्रयुक्त करनेवाला पहला कवि रहा। लगता है कि नुस्रती ने उसे खुसरो से लिया होगा। लेकिन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। नुस्रती ने इस आब्याते-सिलसिला को अपनी गुलशने-इश्क मस्नवी में और अलीनामा नामक ऐतिहासिक आख्यानक प्रदीर्घ काव्य में अपनाया है। डॉ. अब्दुल हक ने दक्षिखनी हिंदी के इस सर्वश्रेष्ठ शायर-मंत्रधी अपने लेखों में

इस तरकीब का निर्देश किया है। लेकिन डॉ. हृषि ने उसके लिए कोई नाम नहीं बनाया है। उन्होंने वस, यही वहा है कि दो पंचितयोंवाले ये सारे पद एकत्रित करने से कसीदा हो जाता है। दविखनी के शायर इव्वन निशाती ने भी अपनी फूलबन (रचना शक १५८८, हिजरी १०७६), नामक मस्नवी में आवयाते-सिलसिला को प्रयुक्त किया है। फूलबन में ४९ अध्याय हैं जिनमें केवल १७४४ पद हैं। द्विपंचितयों-वाले ४९ पदों का कसीदा हो जाता है, जिसमें समग्र काव्य-ग्रंथ का सार होता है। दविखनी हिंदी के और एक शायर आलिम (शक ६०७) ने अपनी मस्नवी मुआजि जातेनवी में भी इस तरकीब का प्रयोग किया है। मुआजिम तथा एक अन्य शायर भी अपनी मसनवियों में इस तरकीब को काम में लाए हैं।

खुसरो ने संस्कृत से आवयाते-सिलसिला को लिया, इस तथ्य का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। लेकिन इस निष्कर्ष के लिए परिस्थितिजन्य प्रमाण है। खुसरो को अपनी जन्मभूमि के नाते भारत पर अतीव भक्ति थी। वेदों और स्मृतियों की संस्कृत भाषा के प्रति भी उन्हें गहरी आस्था थी। वे कई अन्य भारतीय भाषाएँ भी जानते थे, कई भाषाओं में लिख भी पाते थे।

वाद के उर्दू साहित्य की रेखता शैली के जनक अमीर खुसरो हैं। मीर तली मीर ने रेखता शैली के हिंदी के कवियों की जीवनियाँ लिखते हुए 'रेखना शैली के बारे में कहा है कि "अव्वल आन की यक मिसराश पारसी व यक हिंदी चुनांचे किता हजरत अमीर खुसरो नविश्तारता शुद। दूयम इनकी निशफ मिस्त्राश हिंदी व निशफ पारसी। (पहले एक पंचित फारसी और दूसरी हिंदी, उदाहरणार्थ, अमीर खुसरो के द्विपंचित वाले पदों में दूसरी पंचित हिंदी और पहली पंचित फारसी।) अमीर खुसरो का मीर द्वारा उल्लिखित पद है--

नकद-इ-दिल-इ-मन गरिफित व दि-शिकस्त ।

फिर कुछ न घडा न कुछ संवारा ॥

निम्न गजल अमीर खुसरो की कही जाती है। उसमें एक पंचित फारसी और एक हिंदी है।

जी हाल-इ मरकीनम कुन तगाफुल ॥
दुराये नैना बनाए बतियाँ ॥

डॉ. वहीद मिर्जा ने कहा है कि अमीर खुसरो ने कुछ गजलों की रचना की थी जिनकी एक पंचित अरबी और एक फारसी है।^१

१. 'मीर नुकतुसशुआरा; संपादक डॉ. अब्दुल हक; औरंगाबाद १९२८; पृ. १७९

२. वहीद मिर्जा; अमीर खुसरो(उर्दू ग्रंथ), प्रयाग, १९४९, पृ. २३७।

खुसरो ने 'नहायतुल-कमाल' शीर्षक दीवान में इन गजलों को संग्रहीत किया है। रेख्ता फारसी शब्द संस्कृत धानु रिस (तेजी से बहना) से बना है। इस संस्कृत धातु के समान धातु यूनानी और लैटिन भाषाओं में भी हैं। फारसी में अर्थ है, बहना, उँड़ेलना, विखेरना। रेख्ता से मतलब है (विभिन्न भाषाओं की पद्ध-पंक्तियों में) प्रवाहित या विखरा या उँड़ेल दिया हुआ।

विश्वनाथ पंडित ने काव्यशास्त्र की विभिन्न विधाओं का विवरण देते हुए अपने ग्रंथ के छठे अध्याय में, संस्कृत साहित्य में जिसे करंभक कहा जाता है उसकी व्याख्या दी है:-

करंभ कतु भाषाभिः विविधाभिः विनिर्नितम् ।
यथा मम षोडशभाषामयी प्रशस्ति-रत्नावली ॥ १

विश्वनाथ ने अपने ही प्रशस्ति रत्नावली ग्रंथ का निर्देश किया है जिसमें उन्होंने करंभक शैली से सोलह भाषाओं का प्रयोग F. या है। लगता है कि अमीर खुसरो के समय से बहुत-से साल पूर्व कवियों द्वारा करंभ कश्चित् प्रयुक्त की जाती रही। मराठी साहित्य में ईस्वी अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में कई कवियों ने करंभक शैली प्रयुक्त की है। राम जोशी ने संस्कृत, मराठी, कन्नड और हिंदी इन चार भाषाओं में प्रणयपरम काव्य-रचना की। कई कवियों ने अपनी मराठी भाषा के साथ हिंदी को जोड़ दिया है। इसे रेख्ता शैली का अनुमरण शायद ही कहा जा सकता है। विश्वनाथ की करंभक शैली की जड़ें सभी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में हैं।

अमीर खुसरो ने 'खालिक-बारी' नामक छोटे-से हिंदी-फारसी शब्दकोश की रचना की है। उसमें १९४ पद हैं। लाहौर के महमूद शिरानी ने उर्दू में और डॉ. श्रीराम शर्मा ने हिंदी में खालिक-बारी का संपादन किया है। शिरानी ने अधूरे कारणों के आधार पर ही राय प्रकट की हि मुगल बादशाह जहाँगीर के जमाने में किसी दूसरे खुसरो ने हिजरी १०३१ में इस ग्रंथ को रचना की। लेकिन अब सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है कि खालिक-बारी के रचयिता अमीर खुसरो ही हैं। डॉ. शर्मा ने इस कोश का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है जिसमें ४७५

हिंदी शब्दों के लिए ४८२ फारसी, २३७ अरबी और तुर्की समान अर्थों के शब्द दिए हैं। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी ग्रंथ महत्वपूर्ण है।

प्राकृत साहित्य की यह सुपरिचित परंपरा रही है कि प्राकृत शब्दकोश और संस्कृत व्याकरण कविता की विधा में रचे जाते थे। छठी शताब्दी ईसवी में वररुचि ने पहला प्राकृत व्याकरण लिखा। अमरसिंह ने अमर कोश नामक संस्कृत कोश बनाया। जैन पडित हेमचंद्र सूरी (निधन शक १०९४) प्राकृत अपभ्रंश अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। देश्य शब्दों का हेमचंद्र का शब्दकोश (हेमचंद्राज शब्दानुशासन, संपादक फिशोल, पूना, १९३८) सभी आधुनिक आर्य भारतीय भाषाओं के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है। स्वयं हेमचंद्र ने अपने पूर्ववर्ती आठ विद्वानों का निर्देश किया है जिन्होंने प्राकृत कोश बनाए हैं:- अभिमानसिंह, गोपाल, देवराज द्वोण, धनपाल, पादलिप्ताचार्य, शीलांक।

हेमचंद्र सूरी के डेढ़ शताब्दी के बाद अमीर खुसरो का आविभाव हुआ। अमीर खुसरो की माता हिंदू थी। खुसरो देशभक्त, विद्वान् थे। उन्होंने यह बात रेखांकित कर बताई है कि वे भारत में पैदा हुए और भारत उनकी जन्मभूमि है। वे मानते रहे कि संसार में भारत सर्वोत्तम देश है, भूमि पर स्वर्ग है।

किरवर-इ-हिंदी-अस्त विहिस्त ब-जमीन।

हिंदी अथवा हिंदवी शब्दकोश फारसी भाषा और अरबी-फारसी लिपि में रचने के बारे में खुसरो ने उस संस्कृत-प्राकृत परंपरा का अनुसरण किया जिसे वररुचि ने स्थापित किया और जिसका हेमचंद्र ने नेतृत्व किया। खुसरो द्वारा स्थापित इस परंपरा का अनुसरण उर्दू क्षेत्र में हिंदी-फारसी शब्दकोशों के संकलन के लिए किया गया। यहाँ द्रष्टव्य है कि, जैसा कि ऊपर बताया चुका है, कथित उर्दू के सारे लेखक उस भाषा को शक १७२८ (हिजरी १२२१) तक हिंदी या रिखा-इ-हिंदी कहा करते थे। डॉ. राना एम. एन. इलाही ने किसी अज्ञात ग्रंथकार द्वारा रचित वाहिद-वारी नामक हिंदी-फारसी शब्दकोश की तिथि दी है। उसकी रचना भी प्राप्त नहीं है। लेकिन पांडुलिपि विक्रम संवत् १६७९ (हिजरी १०३२, शक १५४४) की है। किसी विष्णुदास नामक व्यक्ति के लिए प्रतिलिपि करवाई गई है। उसमें १०३ पद हैं। (वाहिद-वारी दी सहीफा उर्दू त्रैमासिक, लाहौर, जुलाई १९३८) यह शब्दकोश सभी बातों में खालिक-वारी के समान है। डॉ. राना इलाही ने एक कसीदे का जिक्र किया है, जिसका रचयिता हकीम यूसुफ नामक हरत का निवासी था। कसीदे का शीर्षक है दरलुगात-इ-हिंदी।

उसका रचनाकाल हिजरी नौवीं शताब्दी (शक १४४१) है। दो शताब्दियों पहले अमीर द्वारा प्रस्थापित परिपाटी का उसमें किसी फारसी विद्वान् ने अनुसरण किया है। खुसरो के बाद फारसी लिपि में हिंदी फारसी शब्दकोश की रचना की दिशा में यह पहला प्रयास दिखाई देता है।

दविखनी हिंदी-फारसी का पहला शब्दकोश जो (कम से कम आज) अज्ञात व्यक्ति द्वारा रचा गया, हैदराबाद के इदारा-इ-अदवियाद-इ-उर्दू में रखा गया है। डॉ. एम. के गोरे ने उसका परिचय दिया है।^१ पांडुलिपि पर तारीख नहीं हैं। डॉ. गोरे ने अंदाज़ा लगाया है कि उस शब्दकोश के रचयिता जालना (महाराष्ट्र) के शाह आश्रक होंगे, जिन्होने नव-सार-हार की भी रचना की थी। लेकिन इसकी सभवना अत्यत्प्रतीत होती है। शाह आश्रक की भाषा बहुत पुरानी है; इस शब्दकोश की भाषा से वह सर्वथा भिन्न है। लेकिन डॉ. गोरे का यह तर्क सही लगता है कि शब्दकोश की रचना शक १६११ (हिजरी ११००) के लगभग हुई होगी। (तजकिरा-इ-मख्तूतात, वर्ष ५, पृ. २६१) इसके बाद बादशाह औरंगजेब के जमाने में पंजाब के अब्दुल-वासिया हांसवी ने चरागबुल-लुगात की रचना की। यह शब्द फारसी काव्य के रूप में है। उसमें कठिन हिंदी शब्दों का फारसी अर्थ फारसी लिपि में प्रस्तुत है। इस शब्दकोश पर शक १६७२ (हिजरी ११६३) फारसी भाषा में नवादिरुल-लुगात नामक भाष्य और टीकात्मक ग्रंथ सिराजुद्दीन आरजू ने लिखा। उर्दू विद्वान् इस ग्रंथ को अति महत्त्वपूर्ण मानते हैं। उसका विवेचनात्मक संपादन डॉ. अब्दुल्ला ने किया है।^२ आरजू ने भाषादिज्ञान की दृष्टि से ग्रंथ की चर्चा की कोशिश की है। लेकिन आरजू को संस्कृत और प्रकृत का ज्ञान नगण्य था। डॉ. अब्दुल्ला हांसवी या आरजू को समझ लेने की दृष्टि से कुछ भी अधिक नहीं जोड़ पाए हैं।

साफी ने शक १७०८, हिजरी १२०० से पूर्व रचित अपने मतवूआ-इ-सर्वीयाँ शीर्षक ग्रंथ के द्वारा हिंदी उर्दू फारसी क्षेत्र में रचना का प्रयास किया है। (तजकिरा मख्तूतात, खंड ४, पृ. ३३) डॉ. गोरे की राय में यह ग्रंथ अमीर खुसरो के खालिक-बारी का संवर्धित रूप है। गोरे का कहना है कि खुसरो ने ने १७० पद रचे, जब कि साफी ने उनमें और पद जोड़कर उनकी संख्या ३५५ तक बढ़ा दी। २८ पदों का परिचय दिया गया है जिसमें यह बताया गया है कि गोविंदराम नामक व्यक्ति के प्रोत्साहन से ग्रंथ की रचना की गई। हुसेन अली सब्र

१. तजकिरा-इ-मख्तूतात, उर्दू, वर्ष ५, पृ. २६१

२. नवादिरुल-लुगात; डॉ. अब्दुल्ला, कराची, उर्दू, सन १९३१

ने शमा-इ-दविस्तान नामक फारसी-अरबी शब्दकोश की रचना की। (तजकिरा-इ-मख्तूतात, डॉ. गोरे, खंड ४, पृ. २३८) वररुचि और हेमचंद्र के प्राचीन पंथ का अनुसरण करते हुए अमीर खुसरो ने जिस परंपरा को स्थापित किया उसका चरमोत्कर्ष सब्र का यह ग्रंथ है। ग्रंथ पद्यमय है और उसमें १५० पद हैं। उसकी रचना कब हुई यह अज्ञात है। लेकिन डॉ. गोरे की राय में वह शक १८०५, हिजरी १३०० में रचा गया।

माना जाता है कि अमीर खुसरो ने हिंदी या उर्दू में पहेली का सूत्रपात किया। संस्कृत शब्द 'प्रहेलिका' से पहेली शब्द बना है। संस्कृत साहित्य के प्रारंभ से प्रहेलिका एक काव्यशास्त्रीय विधा रही है। अमरकोश में भी उसकी व्याख्या है। 'काव्यालंकार' में भामह ने कहा है कि प्रहेलिका को काव्य का एक रूप नहीं माना जा सकता क्योंकि वह कृत्रिम और रागात्मक भाव से विरहित होता है, अतः वह गद्य है। पर, दंडी प्रहेलिका के प्रबल समर्थक हैं :

ऋडा गोष्ठी विनोदेषु तज्ज्ञः जाकीर्णमंत्रणे ।
परव्यामोहने चापि सोपयोगः प्रहेलिकाः ॥

दंडी ने प्रहेलिका के सोलह प्रकार बताए हैं। मम्मट ने अपने ग्रंथ में प्रहेलिका को स्थान देने से इनकार किया है। हेमचंद्र अपने काव्यानुशासन ग्रंथ में बताते हैं कि वह काव्य नहीं है। विश्वनाथ ने उसका केवल निर्देश किया है और बताया है कि उसमें काव्य तत्त्व नहीं होता :

रसस्य परिपंथित्वाभालंकारः प्रहेलिका ।
उक्तिवैचित्र्यमात्रं साच्युतदत्ताक्षरादिका^१ ॥ १३ ॥

काव्यशास्त्र के इन आचार्यों की सम्मतियों से दो-तीन निष्कर्ष प्रस्तुत होते हैं। पहले यह स्पष्ट किया गया है कि वह एक बौद्धिक कसरत है। यह बताया गया है कि प्रहेलिका एक और दो श्लोकों में होनी चाहिए। उसमें अधिक श्लोक न हों। दूसरे, प्रणय-भाव न हो क्योंकि विद्वानों और सुसभ्य व्यक्तियों की सभा में प्रहेलिका प्रस्तुत की जाती है।

यह पाया गया कि संस्कृत साहित्य में शक तेरहवीं शताब्दी के अंत तक प्रहेलिका का महत्त्व समाप्त हो गया था। उसका निर्देश करनेवाले अंतिम आचार्य विश्वनाथ हैं। लेकिन विद्वानों की बैठकों से लेकर देहाती क्षेत्रों के महिलाओं के

• १. सरस्वती कंठाभरण २, १३५

अ. खु....९....

जमघट तक में उसकी यात्रा हुई है। विशेषकर महिलाओं के लोक-गीतों में वह प्रचलित है। मराठी में उसे उखाणा कहते हैं। गुजराती में उखाना और सिंधी में उखानी कहते हैं। हिंदी और बंगला में उसे पहेली कहते हैं^१। सभी भारतीय भाषाओं में किसी न किसी नाम से उसका प्रचलन है।

शक तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में अमीर खुसरो ने दिल्ली के मुस्लिमों के लिए पहेली का प्रयोग किया। खड़ी बोली, ब्रज या भाखा, अवधी या कोसली, राजस्थानी, पंजाबी आदि भाषाओं में बोलचाल में प्रचलित परंपरा को ही अपनाया गया। रेख्ता-इ-हिंदी, जिसे उर्दू कहते हैं, पर पहेली का स्थायी प्रभाव नहीं है। उर्दू साहित्य के किसी विद्वान् ने पहेली का प्रयोग नहीं किया। उर्दू साहित्य में अमीर खुसरो को छोड़ किसी श्रेष्ठ साहित्यकार ने पहेली का प्रयोग नहीं किया।

इसमें कोई शक नहीं है कि अमीर खुसरो ने कुछ पहेलियों की रचना की। लेकिन उनके नाम पर प्रचलित सारी पहेलियाँ उनकी लिखी हुई नहीं हैं। खुसरो की निम्न पंक्तियों में एक पहेली है—

फारसी बोली आए ना तुर्की ढूँढे पाए ना।
हिंदी बोली आरसी आए खुसरो काहे ना कोई बताए।

खुसरो ने स्पष्ट रूप से बताया है कि पहेली फारसी या तुर्की भाषाओं में नहीं है, लेकिन हिंदी में काफी हैं। खुसरो ने नहायतुल कमाल नामक अपने दीवान में^२ कई कतरें रुबाइतें दी हैं, जो पहेलियाँ हैं। यह फारसी भाषा में है। सारे फारसी साहित्य में वह अन्यतम है। इसमें शक नहीं है कि यह संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं का प्रभाव है।

● ● ●

१. लोकसाहित्याची रूप-रेखा; ले. दुर्गा भागवत, १९५६

२. अमीर खुसरो; वहीद मिर्जा; उर्दू, पृ. २३६

अमीर खुसरो का हिंदी काव्य और 'खालेक-बारी'

—श्री. परमानंद पांचाल



खड़ी बोली हिन्दी के आदि कवि, अमीर खुसरो, प्रसिद्ध सूफी संत हजरत निजामुद्दीन औलिया के प्रिय शिष्य थे और अपने गुरु को बहुत मानते थे। हजरत भी इनसे बहुत प्रेम करते थे और इन्हें तुर्क कहकर पुकारते थे। उनका कहना था कि “परमात्मा जब मुझसे पूछेगा कि निजामुद्दीन, मेरे लिए क्या लाए हो तो मैं अमीर खुसरो को पेश कर दूँगा।”

अमीर खुसरो को अपने भारतीय होने पर गर्व था। अपनी एक फारसी की मस्नवी में इन्होंने लिखा है—

हिंद मेरा मौलिद-ओ मादा-ओ वतन
(अर्थात्—भारत मेरी जन्मभूमि, मेरी
माता, और मेरा देश है।)

ये अरबी और तुर्की के विद्वान् थे, फारसी

इनके घर की बाँदी थी। खड़ी बोली इन्हें अपनी माँ से विरसे में मिली थी। संस्कृत पर भी इन्हें पूरा अधिकार था। इन्होंने अपनी एक मस्नवी “बुलरानी” में लिखा है— “ज्ञान के समर्थक व्यक्ति को ज्ञात होना चाहिए कि संस्कृत का अधिकांश भाषाओं पर अधिकार है।” इससे इनके संस्कृत ज्ञान की भली भाँति पुष्टि हो जाती है।

खुसरो का हिन्दी काव्य अभी तक विवाद का विषय बना हुआ है। अभी तक भी ठीक-ठीक रूप में यह नहीं कहा जा सकता कि इनका कितना काव्य मौलिक है और कितना प्रक्षिप्त है। इन्होंने स्वयं लिखा है कि मैंने हिन्दी में कविताएँ लिखी हैं। किंतु इनकी दृष्टि में चूंकि इनका कोई महत्व नहीं था, अतः इन्होंने अपनी हिन्दी रचनाओं को कभी एकत्र नहीं किया, बल्कि अपने मित्रों में बंटवा लिया।

वैसे तो जन की जिब्हा पर इनका हिन्दी काव्य मौजूद है, किंतु साहित्यिक रूप से इनके हिन्दी काव्य का उल्लेख मौलाना मुहम्मद हुसेन आजाद के ‘आवेहयात’ (१८१६) में मिलता है। इसके पश्चात् जवाहरे-खुसरो^१ तथा अमीर खुसरो^२ में भी खुसरो के हिन्दी काव्य का उल्लेख किया गया है। आगे चलकर पं. रामचंद्र शुक्ल ने भी ‘हिन्दी साहित्य का इतिहास’ में खुसरो की रचनाओं पर पर्याप्त प्रकाश डाला है, किन्तु प्रामाणिक रूप से इनके किसी काव्य-संग्रह को प्रस्तुत करने का प्रयास डॉ. श्रीराम शर्मा ने “खालिक-बारी” के सम्पादन द्वारा ही किया है। खालिक-बारी में ५५ बार हिन्दवी और १२ बार हिन्दी शब्द का प्रयोग हुआ है। खुसरो ने अपनी भाषा को हिन्दवी [हिन्दी] कहा है। इन्होंने अपनी मस्नवी नुह-सिपहर में भारतीय भाषाओं का निम्न प्रकार उल्लेख किया है जिसका भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत महत्व है:-

सिंधी व लाहौरी व कश्मीर व कबर
धुर समंदरी व तैलंगी व गुजर
मावरी व गौरी व बंगाल व अवध
देहली व पेरामांश अंदर हमअहद

जैसे कि ऊपर कहा है, इन्होंने स्वयं को हिन्दी का कवि बनाने का कभी प्रयास नहीं किया था बल्कि मस्नवी के रूप में यूँ ही अशार लिख दिए थे जैसे :-

१. रसीद तथा मुहम्मद अमीन चिरिया कोटी द्वारा १९१८ में प्रकाशित २. मिश्र-बन्धु १९२१, ३. मुहम्मद वहीद मिज्जा १९२१, ४. मस्नवी नुह-सिपहर, संगादक डॉ. वहीद मिज्जा।

आरी आरी बआरी आरी
 मारी मारी बिरह की मारी
 इसकी पुष्टि उनके फारसी के इस कथन से हो जाती है -

रफ्तम व तमाशाई कनार जुए
 दीदम बलम आब जन हिंदूए

(दर्शक के रूप में जो देखता रहा, हिन्दी में जबान से कह डाला ।)

खुसरो के हिन्दी काव्य का सबसे प्रथम प्रमाण हमें दक्खिनी हिन्दी के कवि मुल्ला वजही की रचना "सबरस"^१ (१६३५) में मिलता है, जो निम्न प्रकार है -

पंखा होकर मे ढली, साती तेरा चाव,
 मुंज जलती को जमन गया तेरे लेखन बाव

इसके पश्चात् 'मीर तकी मीर' के तज्जकरे 'निकाअत-उलशोरा' में उनका यह फारसी-हिन्दी मिश्रित रूप मिलता है ।

जरगर पिसरे चूँ माह पारा
 कुछ घड़िए, संवारिए पुकारा
 नक़द दिले मन गिरफ्त व बशकिस्त
 फिर कुछ न घड़ा न संवारा

निकाअत-उल-शोरा में मीर तकी ने खुसरो के लिए लिखा है :-

अशार रेख्ता आ बुजुर्ग बसियार दारद

इसका यह अर्थ हुआ कि मीर के समय तक खुसरो की हिन्दी रचनाएँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थीं ।

मोटे रूप में इनके हिन्दी काव्य के निम्न रूप प्राप्त हैं :

(१) खालिक-बारी—जो एक पर्यायवाची कोश है ।

(२) चेस्तान—जिसमें, सकारण और अकारण पहेलियाँ, कई मुकरनियाँ, दो सखुने तथा ढकोसले आदि सम्मिलित हैं । (३) गजल, (४) दोहे, (५) गीत, गजल में एक पद फारसी और एक हिन्दी है ।

अमीर खुसरो ने फारसी और हिन्दी मिसरों की मिश्रित कविताएँ लिखने का भी प्रयोग किया था। उनकी एक प्रसिद्ध गजल यहाँ द्रष्टव्य है—

जिहाले^१ मिस्की^२ मकुन^३ तगाफुल,^४ दुराए नैनाँ बताए बतियाँ ।
किताबे हिज्जा^५ न दारम^६ ए जान, न लेहू काहे लगाये छतियाँ ।

बू अलिशाह कलन्दर^७ के दीवान के पहले पृष्ठ पर भी इस गजल का उल्लेख अमीर खुसरो के नाम से किया गया है और डॉ. स्परंग ने भी १८५२ ई. में अपने लेख में इस का उल्लेख किया था।

शाबाने^८ हिज्ज दराज^९ चूँ जुल्फ व रोजै वसलत^{१०} चूँ उम्र कोताह^{११} ।
सखी पिया को जो मैं ना देखू तो कैसे काढू अन्धेरी रतियाँ ।

खुसरो वडे ही प्रत्युत्पन्नमति कवि थे। समस्या सामने आई नहीं कि कविता हाजिर। किवदंती है कि एक बार अमीर खुसरो एक कुएँ पर पानी पीने के लिए गए। वहाँ चार स्त्रियाँ पानी भर रही थीं। स्त्रियों ने इनसे कहा कि वे उस समय उसे पानी पिलाएँगी जब वे उनके चार शब्दों—खीर, चर्खा, कुत्ता तथा ढोल—को एक ही कविता में पिरो देंगे। खुसरो तो आशुकवि थे ही, तुरन्त यह ढकोसला कह दिया :

खीर पकाई जतन से, चर्खा दिया जलाय,
आया कुत्ता खा गया तू बैठो ढोल बजाय।

अमीर खुसरो की सबसे अधिक लोकप्रिय हिन्दी रचना 'खालिक-बारी' है। इसके अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं तथा बहुत-सी हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। कहा जाता है कि पहले यह एक बहुत ही वृहद ग्रंथ था जो अब लघु रूप में ही उपलब्ध है। कितु ऐसा मानने का कोई ठोस प्रमाण हमारे सामने उपलब्ध नहीं है। केवल इसके छन्दों और अध्यायों को विना पर ही यह कल्पना की जा सकती है क्योंकि इसमें कोई-कोई अध्याय दस पंद्रह पदों का है और किसी में केवल एक ही पद है कितु यह विभाजन रचनाकार का नहीं है।

खालिक-बारी में मुख्य रूप से फारसी और हिन्दी के पर्यायवाची शब्द दिए गए हैं। कहीं-कहीं अरबी पर्याय भी हैं। केवल दो शब्दों का सम्बन्ध तुर्की से है। शब्दों का वर्गीकरण निम्न प्रकार है—

१. जिहाल अज हाल-दशा, २. दीन, ३. मनकर, ४. उपेक्षा, ५. वियोग,
६. नहीं रखता, ७. रातें, ८. लंबी, ९. संयोग, १०. छोटी

अरबी—२३७, तुर्की-फारसी—४८२, हिन्दी—५७५।

इनमें कुछ शब्द अनेक बार भी आए हैं। शब्दों के अतिरिक्त कुछ वाक्यांश भी हैं जिनके हिन्दी पर्याय दिए गए हैं। कहीं-कहीं एक विषय से सम्बन्धित एक साथ कई शब्द भी दिए गए हैं :

खंजरो शम्शीरो समसामस्त तेग
हिंदवी खांडा कहा वे उन्मन मेग

यहाँ 'खंजर', 'समसाम' अरबी भाषा के हैं और 'शम्शीर' और 'तेग' फारसी के तथा 'खांडा' हिन्दी का है। पर्याय देते समय किसी एक भाषा को आधार नहीं बनाया गया है। कहीं मुख्य शब्द फारसी का है, कहीं हिन्दी का। कहीं पर्यायों का कम अरबी-फारसी-हिन्दी है तो कहीं फारसी-अरबी-हिन्दी और कहीं हिन्दी-फारसी-अरबी है।

सफदर 'आह' ने अपनी रचना 'अमीर खुसरो बहैसियत हिंदी शायर' में लिखा है कि खालिक-बारी खुसरो की आरंभिक आयु की रचना है जिसे उसने मकतवी शिक्षा में पढ़ी हुई पुस्तक निसाबुल सिवियान^१ के अनुकरण पर लिखा था। खालिक-बारी पर इसका प्रभाव स्पष्ट है। देखिए :

सवार दस्त निरंजन चू पाए रा खलखाल
व शाद अकद हमायल र आश र ताज अफसर
(निसाब उल सिवियात)

दस्त विर्जन कंगन कहिए पायल है खलखाल ।
पाए विर्जन चूडा कहिए खुबी हुस्न जमाल ॥
(खालिक-बारी)

खालिक-बारी के सम्बन्ध में सामान्य धारणा यही है कि यह एक पाठ्यपुस्तक है जो भारतीय बच्चों की शिक्षा के लिए लिखी गई थी। खालिक-बारी का सबसे पुराना नुस्खा भी, जो खुसरो के देहावसान के ग्यारह वर्ष बाद अर्थात् ७३६ हि. में लिखा गया था और जिसकी प्रतिलिपि नुस्खा नदवी और

१. खुसरो के जन्म से ३०, ३५ वर्ष पूर्व ६१७ हि. में अबूनस 'फरादी' ने अरबी शब्दों की शिक्षा के लिए अफगानिस्तान के शहर फराह में 'निसाबुल सिवियान' नाम से एक पाठ्यपुस्तक तैयार की थी, जिसे मकतवों (पाठशालाओं) में पढ़ाया जाता था। अनुमान यह है कि खुसरो ने अपने समय में इसे अवश्य पढ़ा होगा।

उर्दू रिसर्च इन्स्टिट्यूट, बम्बई है, इसी विचार की पुष्टि करता है। इसके लिपिबद्ध करनेवाले (कातिब) ने कहा है :

व तारोख स अंग्राम यापत
निसाबे जरिफी नको नाम यापत

इससे स्पष्ट है कि यह एक किताब (पाठ्यपुस्तक) थी और इसका नाम 'निसाबे जरीफी' था। विनोदी पाठ्यपुस्तक के रचयिता ने बच्चों की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियाँ का पूरा ध्यान रखा है। जैसे :

- (१) यह पुस्तक पद्य में है और बच्चे पद्य को शीघ्र कंठस्थ कर लेते हैं।
- (२) इस पुस्तक में हास्य और विनोद की सर्वत्र भरमार है जिससे बच्चे हँसी-हँसी में सैकड़ों शब्द याद कर जाते हैं।
- (३) यह पुस्तक मस्नवी की भाँति एक ही बहर (छंद) में नहीं लिखी गई है। इसका प्रत्येक अध्याय एक नये छंद में मिलता है।

खालिक-बारी की परंपरा

भारत में भाषायी शब्दकोश की समृद्ध परम्परा है। 'पारसी प्रकाश' पुस्तक का सम्पादन बेवर ने किया था। 'उक्ति-व्यक्ति प्रकरण' बहुत ही पुरानी पुस्तक है। प्रसिद्ध भाषाविद् मुनि जिनविजय ने प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृत से संबंधित कुछ इसी प्रकार की पुस्तकों का पता चलाया है। डॉ. प्रभाकर माचवे ने केरल प्रदेश में लिखी संस्कृत मलयालम मिश्रित रचनाओं की जानकारी दी है। खालिक-बारी भी इस परंपरा की एक कड़ी है। खालिक-बारी की प्रसिद्धि इतनी बढ़ी कि इसके बाद ऐसी पुस्तकों की एक बाढ़-सी आ गई। मुहमद शीरानी ने ऐसी पुस्तकों की एक लम्बी सूची तैयार की है। जिसमें निम्नलिखित पुस्तकें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

१. अल्लाह खुदाई (१०६०) रचयिता : तजल्ली
२. फरद सवियान-रचयिता : शेख इसहाक लाहोरी
३. महमदवारी (बारहवी शती हि.) अब्दुल अबास
(कई बार प्रकाशित हो चुका है।)
४. निसाब मुस्नफा (१२२६ हि.) इसमें ८०० के लगभग पंक्तियाँ हैं।
५. कसीदा लुगत (हिन्दी ९५० हि.) 'युसुफ हरवी' एक ईरानी हकीम थे।

इनके अतिरिक्त बदिरनामा (मिर्जा गालिब), अल्लाह बारी (१७०७ हि.) (अहसन), कादिर शादी (१२१०), फरयदा इज़द बारी, अहमद बारी, फौज बारी आदि अनेक रचनाएँ प्रकाश में आई हैं। कई पाठ्यपुस्तकों तो खालिक-बारी के ही नाम से लिखी गई हैं जैसे खालिक-बारी मुहम्मद अकरम, खालिक-बारी गुलामअली शाह।

पंजाबी में भी इस प्रकार की रचनाएँ हुई हैं, जैसे :

- (१) रज्जक बारी (१०७१ हि.) इस्मानेल
- (२) ईज़द बारी (११०५ हि.) खतरमल
- (३) सनअत बारी (१२२० हि.) गणेश दास

इनके अतिरिक्त वासह बारी, नासिर बारी, आज़म बारी, सादिक बारी आदि अनेक पुस्तकों पंजाबी में छपी हैं। कहा जाता है कि गुजराती और तेलगु भाषाओं में भी खालिक बारी के अनुकरण पर पुस्तकों लिखी गई थीं।

खालिक-बारी की वैधता

खालिक बारी की वैधता को लेकर विद्वानों में बहुत मतभेद हैं। प्रो. शीरानी खालिक-बारी को अमीर खुसरो की रचना नहीं मानते। उनका कथन है कि यह जहाँगीर के समय में ज़ियाउद्दीन खुसरो द्वारा लिखी गई थी।^१ शीरानी के आक्षेप अंजुमन तरक्की-ए-उर्दू के पुस्तकालय में उपलब्ध खालिक बारी की पुरानी हस्त-लिखित प्रति पर आधारित हैं जिसका लिपि काल १७७५ ई. है। शीरानी के अनुसार—

(१) बच्चों को फारसी सिखाने के लिए यह पुस्तक लिखी गई है।

(२) पुस्तक का नाम हिफजुल्लीसान है और दैनिक व्यवहार के शब्द ही इसमें समाविष्ट हैं।

(३) बाबा इसहाक हलवाई के अंगुरोध पर यह कोश प्रस्तुत किया गया।

(४) लेखक का नाम ज़ियाउद्दीन खुसरो है।

लेखन काल १०३१ हि. (१६२२ ई.) पुस्तक के अंतिम पद से स्पष्ट होता है जो इस प्रकार है :—

खालिक-बारी कई तमाम दोहँ जग रहिया खुसरो नाम।

खालिक बारी में प्रयुक्त 'दाम' और 'दमड़ा' शब्द को लेकर ही शीरानी इसे जहाँगीरकालीन मानते हैं। उनका कथन है कि 'वहर हाल दाम और दमड़ा अकबरी दौर से कब्ल नामूल थे। जब खालिक बारी में ये अलफाज़ (शब्द) मौजूद हैं तो जाहिर है कि अकबर के बाद इसकी तालीफ (रचना) अमल में आई होगी। आगे चलकर शीरानी कहते हैं कि मेरा ख्याल है कि हमने खालिक बारी को ज़रूरत से ज्यादा अहमियत दी है। तारीख व अदब में कहीं इसका जिक्र नहीं आता।'

शीरानी महोदय का यह तक कि दाम और दमड़ी शब्द अकबर के समय से पूर्व प्रचलित नहीं थे, कसौटी पर खरा नहीं उतरता क्योंकि मुगल काल में बहुत-से ऐसे सिवके भी थे जिनका प्रचलन बहुत पहले से चला आ रहा था, जैसे तनका, दीनार, जीतल, सानी आदि। दाम और दमड़ा बहुत प्राचीन शब्द हैं। डॉ. परमेश्वरी-लाल गृष्ट ने खिलजी सुल्तान दिल्ली के सिक्कों पर १९५७ में एक लेख लिखा था। उन्होंने एक प्राचीन पुस्तक 'द्रव्य परीखा' का उद्धरण देकर बताया है कि 'दाम' शब्द बड़ा पुराना है। दाम (द्राम्म, दाम्म) सम्भवतः अपभ्रंश से निकला है। मौलाना सुलेमान निदवी अपनी पुस्तक नकूश-ए-सुलेमानी में लिखते हैं कि यह शब्द दरखम से बना है जो यूनानी व्यापारियों के द्वारा अरब, ईरान होता हुआ भारत आया और भारत में यह दाम रह गया। योरप की भाषाओं में दाम शब्द भी उसी का एक रूप है। अतः यह शब्द भारत में मुसलमानों के आगमन के भी पहले आया था।

शीरानी का दूसरा आक्षेप यह है कि अमीर खुसरो ने कुछ शब्दों के अर्थ अपनी अन्य रचनाओं में खालिक बारी से भिन्न लिए हैं। अतः अमीर खुसरो और खालिक बारी के रचयिता के दो भिन्न व्यक्ति हैं। उदाहरण के लिए :

फारसी सीमुर्ग अन्का हस्त तद्वो कब्क हंस।

हम चो यरकानस्त कांवरी हैं जरीरो नस्ल बंस ॥ १५५॥

यहाँ शीरानी का संकेत यह है कि खालिक बारी के रचयिता ने 'तद्रव' और 'कब्क' को एक ही पक्षी माना है किंतु 'कुरान-उस्सादीन' में खुसरो इन दो गक्षियों को भिन्न-भिन्न मानते हैं—

आँके परीदे जपर खूद तद्रवः

माँद चोपरगम शुदजेर सरव

१. मुहम्मद शीरानी : हिफजुल्लिसान अंजुमन तरक्की ए उर्दू पूर्व प्रचलित था। शीरानी महोदय का यह तर्क ठीक प्रतीत नहीं होता।

ताला चो अज को है बरफत अज शिकवा
कबक व बरीद दिल तेग काहे

किंतु खालिक-बारी में भी सीमुर्ग, अन्का, तद्रव, कब्क और हंस अलग पक्षी के रूप में ही प्रयुक्त हैं। यह गलती नहीं, बल्कि तसर्हफ (प्रयोग) है।

खालिक-बारी की प्रसिद्धि को देखकर ही तजल्ली ने अल्लाह खुदाई की रचना की थी। वह १०६० हि. में अपनी पुस्तक का प्रणयन करते समय, अमीर खुसरो की आत्मा से इस प्रकार सहायता माँगता है :

शायद अज लुत्फ व रहमत 'बारी'
रुहे खुसरो तमामीदम यारी।

यहाँ 'बारी' शब्द से खालिक बारी की ओर ही संकेत है। यहो नहीं, तजल्ली अमीर खुसरो के गुरु निजामुद्दीन औलिया से भी सहायता की प्रार्थना करता है।

बहरे मुर्ग सखुन निहादम दाम
मदद ले स्वास्तम अज रुहे निजाम

अतः स्पष्ट है कि खालिक बारी के रचयिता हजरत निजामुद्दीन औलिया के शिष्य अमीर खुसरो के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति नहीं था।

अतः हम अमीन अब्बासी चिरिया कोटी के शब्दों में यही कह सकते हैं कि इसमें शक करने की बहुत कम वजूह (कारण) है कि खालिक बारी हजरत अमीर खुसरो की ही तसरीफ (रचना) है। डॉ. श्रीराम शर्मा ने हाल ही में नागरी प्रचारिणी सभा के तत्त्वावधान में खालिक बारी का हिंदी में सम्पादन किया है जो एक श्लाघनीय प्रयास है।

खालिक-बारी एक प्रकार का कोश है, जिसमें २१५ शेर हैं और जिसमें तुर्की-अरबी तथा फारसी शब्दों के हिंदी पर्याय दिए गए हैं, जैसे—

खालिक बारी सिरजनहार।
वाहिद एक बदा करतार।

खालिक बारी की रचना उस समय की एक ऐतिहासिक आवश्यकता थी, क्योंकि अरब तुर्किस्तान तथा ईरान से आनेवाले मुसलमानों के लिए भारत के

निवासियों की भाषा का सम्यक् ज्ञान बहुत आवश्यक था। अतः मदरसों में 'खालिक बारी' को पाठ्यपुस्तक के रूप में पढ़ाया जाता था।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन का कहना है कि "खुसरो को खड़ी (कौरवी) हिंदी का प्रथम कवि बताया जाता है। पर इसमें संदेह है..... खुसरो के समय अर्थात् १३ वीं सदी में प्राकृत तत्सम शब्दों का प्रयोग ज्यादा होता था। खुसरो के समकालीन फारसी इतिहासकार राजपूत के लिए 'राउत' शब्द का प्रयोग करते हैं— ऐसे शब्दों का खुसरो की कविता में अभाव है। दूसरे, खुसरो की कविताओं के कोई भी समकालीन या उससे तीन चार सौ वर्ष बाद के उल्लेख नहीं मिलते।"

मौलाना मुहम्मद अमीन चिरिया कोटी ने खालिक बारी को "खुसरो की रचना" मानने में निम्न तर्क दिए हैं :—

- (१) यह कृति सदैव से अमीर खुसरो के नाम से प्रसिद्ध है।
- (२) इसकी बहरें इतनी सुस्पष्ट और संगीतमय हैं कि इसे खुसरो के मस्तिष्क और लेखनी की ही उपज माना जा सकता है।
- (३) इसमें कुछ ऐसे शब्द मौजूद हैं जो खुसरो के समय से ही संबंधित हैं। जैसे जीतल^१।

(४) मस्नवी के अन्त में खुसरो का नाम इस खूबी और स्वाभाविकता से लिया जाता है कि इससे खुसरो के इसका लेखक होने पर संदेह नहीं किया जा सकता।

(५) कुछ अन्य साहित्यिकों ने भी मिश्रित काव्य के संबंध में खुसरो का उल्लेख किया है। सैयद मसूद हुसेन साहब रिजवी ने इसी प्रकार के एक मिश्रित पाठ अल्लाह खुदाई का उल्लेख किया है जिसके लेखक ने खुसरो की आत्मा से सहायता माँगी है। अतः उसके विचार से भी खालिक बारी खुसरो ही की रचना है जिसकी वह नकल करना चाहता है।

• • •

१. दक्खिनी हिंदी, काव्यधारा—राहुल सांकृत्यायन, 'दो शब्द'

२. जीतल—एक सिक्का था।

अखबारनवीस अमीर खुसरो

-डॉ. यूसुफ पठान



अमीर खुसरो की रचनाओं पर इतिहास का प्रभाव विशेष रूप से दिखाई देता है। उनके गद्य तथा काव्य साहित्य में इतिहासपरक रचनाओं का ही आधिक्य है। गद्य की अपेक्षा खुसरो ने काव्य की रचना अधिक की और काव्य-साहित्य का अधिष्ठान भी विशेषकर इतिहास ही है। उनके एक दीवान (कविता-संग्रह) का नाम है 'गुर्तुल कमाल' जिसकी रचना उन्होंने सन १२९१ में की। इसी दीवान की एक प्रदीर्घ कविता ('मस्नवी') है— 'मिफताहल फुतुह'। यह रचना बहुत लोकप्रिय हुई। इस प्रदीर्घ कविता में खुसरो ने सुलतान जलालुद्दीन खिलजी की विजयों का वर्णन किया है।

'दीवल रानी तथा खिज्रखाँ' नामक आख्यान-काव्य की उन्होंने रचना की, जिसमें सुलतान

अलाउद्दीन के पुत्र खिजरखाँ तथा गुजरात के राजा करण की कन्या देवल देवी की प्रेम-गाथा बखानी है। प्रेम-कथा के साथ-साथ संबंधित ऐतिहासिक प्रसंगों का विस्तृत वर्णन इस आख्यान-काव्य में पाया जाता है।

‘नुह सिपहर’ नामक कविता खुसरो ने सुलतान कुतुबुद्दीन मुबारक की आज्ञा से लिखी थी। इस दीर्घ कविता में सुलतान कुतुबुद्दीन के राज्यारोहण से लेकर शाहजादा मुहम्मद के जन्म तक के ऐतिहासिक प्रसंगों वर्णन किया गया है।

खुसरो का ‘तुग़लक नामा’ काव्य भी विशेष प्रसिद्ध है जिसकी रचना उन्होंने सन १३२० में की। इसमें सुलतान कुतुबुद्दीन की हत्या से लेकर तुगलक के विद्रोह तथा उसकी महत्वपूर्ण विजयों का वर्णन किया गया है।

उनके गद्य साहित्य में ‘खजाइनुल फुतुह’, ‘अफदल-अल फवाइद’ और ‘एजाजए खुसरबी’ महत्वपूर्ण हैं। खुसरो सन्त निजामुद्दीन औलिया के संपर्क में आए थे; उन्होंने संत निजामुद्दीन के वचनों का संग्रह ‘अफदल-अल फवाइद’ के नाम से किया और वह उन्हें (सन्त निजामुद्दीन को) सन १३१९ में समर्पण किया। ‘एजाज ए खुसरबी’ एक विशेष प्रकार की गद्य-रचना है, जिसकी तुलना ‘हयाते अमीर खुसरो’ नामक उर्दू ग्रंथ के नकी मुहम्मदखाँ खुरजबी ने फिरदासी के ‘शाहनामा’ तथा निजामी के ‘सिकदरनामा’ आदि ग्रंथ से की है। ‘द एन्सायक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम’ ने इस ग्रंथ का वर्णन ‘स्पेसिमेन्स ऑफ इलेगंट प्रोज कंपोजिशन कहकर किया है। इन दो रचनाओं से भी ‘खजाइनुल फुतुह’ का महत्व अधिक माना जाता है और उसका अधिष्ठान इतिहास ही है।

‘खजाइनुल फुतुह’ में खुसरो ने अल्लाउद्दीन खिलजी की अनेक विजयों का वर्णन किया है। खिलजी ने अनेक विजय प्राप्त किए, जिन्हें खुसरो ने ‘विजयों का खजाना’ (‘खजाइनुल फुतुह’) कहा है। इन विजय-वर्णनों के साथ-साथ अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन खिलजी की शासन-व्यवस्था का भी वर्णन किया है।

‘खजाइनुल फुतुह’ एक ‘अखबार’ है और इसी दृष्टि से इस ग्रंथ का तथा उसके कर्ता ‘अखबारनबीस’ अमीर खुसरो का परीक्षण करना उचित होगा।

१ ‘हयाते अमीर खुसरो’ प्रकाशक : किताब मंजिल, लाहौर।

‘अखबारनवीसी’ या ‘तारीख-नवीसी’ (इतिहास-लेखन) की परंपरा फारसी में विशेष रूप से थी। मुस्लिम शासकों के दरबारों में अखबार-नवीसों की नियुक्ति की जाती थी। इसी फारसी इतिहास-लेखन-पद्धति का प्रभाव महाराष्ट्र के शासकों पर भी पड़ा और उन्होंने अपने दरबारों में मराठी ‘अखबार-नवीस’ या ‘बखर-नवीस’ नियुक्त किए। इसी कारण मराठी का ‘बखर-साहित्य’ समृद्ध हुआ।

‘अखबार’ को केवल इतिहास मानना उचित न होगा। इतिहास का अधिष्ठान उसे अवश्य होता है किन्तु उसमें अखबारनवीस की प्रतिभा का विलास भी प्रतीत होता है। इसीलिए ‘अखबार’ एक साहित्य-कृति है, जिसमें ऐतिहासिक मूल्य के साथ-साथ साहित्य-मूल्यों का भी सुंदर समन्वय पाया जाता है।

‘खजाइनुल फुतुह’ में ‘अखबार’ की सारी विशेषताएँ प्रकट हुई हैं।

इस ग्रंथ में जो इतिहास प्रतिबिम्बित हुआ है, उसकी सीमारेखाएँ सन् १२९६ से लेकर सन् १३११ तक फैली हुई हैं। अलाउद्दीन खिलजी के विविध आक्रमण और उन आक्रमणों में उसे जो सफलताएँ प्राप्त हुई उनका वर्णन इस ग्रंथ में किया गया है। अलाउद्दीन की सेनाओं से जो मुकाबले हुए उनके वर्णन भी इस ग्रंथ में पाए जाते हैं। साथ ही साथ खिलजी ने गुजरात, राजपूताना, मालवा तथा देवगिरि पर जो आक्रमण किए, उनमें उसे जो सफलताएँ प्राप्त हुई उनका भी वर्णन खुसरो ने किया है। सिवाना, वरंगल तथा मावर में प्राप्त विजयों का वर्णन भी उन्होंने अपने ग्रंथ में किया है। ग्रंथ का नाम ही ‘विजयों का खजाना’ है और इस प्रकार के वर्णन पढ़ते समय वह सार्थक प्रतीत होता है।

खुसरो इस्लामी दरबार के आश्रित थे। गुलाम वंश के पतन से लेकर इन्होंने तुगलक वंश के आरंभ तक का काल देखा था। खिलजी वंश का शासनकाल तो इनके जीवन का मध्यम युग था। इस प्रकार इन्होंने दिल्ली के सिंहासन पर रायरह बादशाहों का आरोहण देखा था।^१ इतना ही नहीं बल्कि खुसरो केवल कवि ही नहीं था वह योद्धा भी था और साथ ही क्रियाशील मनुष्य भी। उसने अनेक चढ़ाइयों भाग भी लिया था, जिनका वर्णन उसने अपने ग्रंथों में किया है।^२

‘खजाइनुल फुतुह’ के युद्धवर्णन पढ़ते समय डॉ. वर्मा तथा डॉ. ईश्वरी-साद के उपरनिर्दिष्ट विधानों की सत्यता प्रतीत होती है। ये सभी युद्धवर्णन

१. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. रामकुमार वर्मा, पृष्ठ १२६

२. मिडिन्हिल इंडिया, डॉ. ईश्वरी प्रसाद, पृ. १७१.२

पढ़ते समय ऐसा लगता है कि स्वयं खुसरो इन युद्धों के समय वहाँ उपस्थित थे।^१ आक्रमणपूर्व योजना, प्रत्यक्ष युद्ध के विभिन्न पहलुओं का विवरण, विजय के पश्चात् प्राप्त धन राशि का वर्णन, युद्धों में जिन सिपाहियों ने तथा सरदारों ने विशेष वीरता दिखलाई उनके पराक्रम का वर्णन आदि बातें पढ़ते समय खुसरो की वर्णन-शैली की सूक्ष्मता तथा चित्रमयता का प्रभाव पाठकों के मन पर अवश्य ही होता है।

इतिहास की दृष्टि से आक्रमण की घटनाएँ सत्य हैं, किन्तु उनमें अतिरंजितता भी दिखाई देती है। इस्लामी सेना के शीर्य का वर्णन करते समय खुसरो शत्रु तथा शत्रुसेना की कायरता का वर्णन करते हैं, जो कभी-कभी अवास्तव तथा अनैतिहासिक भी प्रतीत होता है। देवागिरि के आक्रमण का वर्णन खुसरो ने किया है, वह इसी प्रकार का है। इस्लामी दरबार का आश्रित होने के कारण वह अपने बादशाह तथा उसकी सेना की बार-बार प्रशसा करता है और शत्रु की कायरता एक गृहीत बात मानता है। लेकिन कभी-कभी उसे भी यह मानना पड़ता है कि इस्लामी सेना के शत्रु भी शूर थे और वे डटकर प्रतिकार करते थे। रणथम्बोर तथा चित्तौड़ पर जो आक्रमण हुए उनका वर्णन करते समय अमीर खुसरो ने यह बात स्पष्ट रूप से लिख दी है।^२

अखबार-लेखन इतिहास की दृष्टि से वार्ता-लेखन है। इन वार्ताओं में घटनाओं का विवरण तिथि-निर्देश के साथ किया जाता है। 'खजाइनुल फुतुह' में जितनी भी घटनाओं का वर्णन खुसरो ने किया है उन सभी घटनाओं का तिथि-निर्देश भी उन्होंने अपरिहार्यतः किया है। इतना ही नहीं बल्कि तिथि के साथ-साथ दिन का भी निर्देश करने में उन्होंने भूल नहीं की है।

अमीर खुसरो एक कुशल निवेदक हैं। जिन घटनाओं का वर्णन वे करते हैं; उन्हें वे पाठकों के सामने साधारण कर देते हैं। उनके घटना-निवेदन में एक विशेष लक्षणीय गुण है और वह है गतिमानता। जितनी गतिमानता इन युद्धों में है, उतनी ही गतिमानता उनके इन वर्णनों में भी आ गई है। एक घटना को दूसरी घटना के साथ बांधकर अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का एक घटना-चक्र निर्माण करने में खुसरो की कुशलता दिखाई देती है। संक्षेप तथा विस्तार

१. ११ 'मुहर्रम ७०३ हिजरी को सुलतान उस किले में दाखिल हो गया। उसका दास अमीर खुसरो था।' खलजी कालीन भारत, पृ. १०६.

२. 'शाही सेना दो मास तक आक्रमण करती रही किंतु विजय प्राप्त न हो सकी।' 'खलजी कालीन भारत', पृ. १६०

का औचित्य कुशल अखबार-नवीस का एक विशेष गुण होता है। अमीर खुसरो में यह गुण विशेष रूप से दृग्मोचर होता है। जहाँ विस्तार की आवश्यकता होती है, केवल वहाँ वे विस्तार से वर्णन करते करते हैं। आवश्यकतानुसार वे कुछ घटनाओं का केवल संकेत ही करते हैं। इसी कारण से 'खजाइनुल फुतुह' पढ़ते समय हमारी जिज्ञासा कहीं भी कुंठित नहीं होती।

खुसरो की वर्णन-शैली रोचक होते हुए भी उसका एक दोष बहुत खटकता है अतिशयोक्ति। 'खजाइनुल फुतुह' के अनेक वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण हैं; जैसे—
(१) चारों ओर पहाड़ियाँ थीं। मार्ग सितार के तार से भी बारीक था।^१ (२) यह (किला) पत्थर का बनाया हुआ था। पत्थर इस कुशलता से जमाए गए थे कि उनके बीच में कोई सुई भी न जा सकती थी।^२ (३) उसने यह सूचना भेजी कि मेरे पास इतना सोना है कि जिससे हिंदुस्थान के सभी पर्वत ढँके जा सकते हैं।^३

अतिशयोक्ति खुसरो की वर्णन-शैली का मानो एक अंग ही बन गया है।

खुसरो की गद्य शैली की और एक विशेषता है और वह है काव्यमयता। वर्णन करते समय खुसरो का कवि-हृदय भी जागृत हो उठता है और अपनी रस-पूर्ण शैली में वह वर्ण्य प्रसंग को जीवित एवं साकार कर देता है।

अलंकारिकता इन काव्यमय वर्णनों का एक अंगभूत भाग है। अलाउद्दीन ने जिन मस्जिदों का निर्माण किया उनका वर्णन करते समय खुसरो कहते हैं—

"कुरान की आयतें पत्थरों पर खुदवाई। एक ओर लेख इतने ऊँचे चढ़ गए थे कि मानो भगवान का नाम आकाश की ओर जा रहा हो। दूसरी ओर लेख इस प्रकार नीचे तक आ गए थे कि मानो कुरान भूमि पर आ रहा हो।"^४

और एक मीनार का वर्णन देखिए—

"मीनार को मजबूत बनाने के लिए और उसे उतना ऊँचा बनाने के लिए कि पुरानी मीनार नई मीनार की मिहराब मालूम हो उसने (सुलतान ने) इस बात का आदेश दिया कि पुरानी मीनार की अपेक्षा नई मीनार की परिधि दुगुनी बनाई जाए।"^५

१. 'खलजी कालीन भारत', अनु. सैयद अतहर अब्बास रजवी, पृ. १६२

२. वही, पृ. १६४

३. वही, पृ. १६४

४. खलजी कालीन भारत, पृ. १५७

५. वही, पृ. १५७

हौज का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

“ शम्सी ” नामक हौज सूर्य के समान कमायत तक चमकता रहेगा ।”^१

एक किले का विध्वंस इस प्रकार हुआ—

“ लगभग आधा किला आकाश में धूल के समान उड़ गया । शेष आधा किला भूमि में रक्षा के लिए गिर पड़ा । ”^२

इस ग्रन्थ के प्रसंग-वर्णन तथा स्थल-वर्णन भी लक्षणीय हैं । उनमें चित्र-मयता आ गई है । अलाउद्दीन ने जिन भवनों का निर्माण किया उनका वर्णन ‘ खजाइनुल फुतुह ’ के प्रारंभ में किया गया है । उसके पश्चात् देहली के किले का भी वर्णन किया गया है । वरंगल के उद्यानों तथा किले के सुंदर वर्णन भी इस ग्रन्थ में पाए जाते हैं । वर्मतपुर के एक सुंदर मंदिर का वर्णन खुसरो ने ‘ मावर की विजय ’ का विवरण करते समय किया है, वह भी लक्षणीय है ।^३

पहेलियों के रचयिता अमीर खुसरो के दर्शन भी इस ग्रन्थ में जगह-जगह होते हैं । पहेलियों में जिस प्रकार के विरोधाभास तथा श्लेष की योजना होती है उसी प्रकार की रचना ‘ खजाइनुल फुतुह ’ में भी प्राप्त होती है जिससे उनके कल्पनाविलास के दर्शन भी होते हैं ।

(१) खजाने को इस प्रकार परिपूर्ण कर दिया कि न तो वुध ग्रह उसे अपनी लेखनी से लिख सकता है और न शुक्र ग्रह अपने तराजू से उसे तौल सकता है ।^४

(२) एक रईस नियुक्त किया गया जो कि बकवादी दूकानदारों से न्याय के कोड़े से बात करता था । इसके फलस्वरूप गूंगे खरीदनेवाले भी बोलने लगे थे ।^५

(३) यदि कोई कम तौलता, तो वही लोहा (वजन) उसके गले में तौक बन जाता था । यदि इस पर भी वे न मानते थे तो तौक तलवार बन जाता ।... (दूकानदार) लोहे के बाँटों के शब्द उनके प्राणों के लिए जन्तर के समान थे ।^६

१. वही, पृ. १५८

२. खलजी कालीन भारत, पृ. १६४

३. वही, पृ. १६८-६९

४. खलजी कालीन भारत, पृ. १५५

५. वही, पृ. १५५

६. वही, पृ. १५६

(४) जब गेसूमल ने रात्रि के केशों में से मनुष्य के सिर के बाल के समान अत्यधिक इस्लामी सेना देखी तो उसके शरीर रोएँ कंधी के दांतों के समान खड़े हो गए। वह धुंधराले बालों के समान गिरता पड़ता किले की ओर भागा।¹

इस प्रकार के वाक्य पढ़ते समय अमीर खुसरो की पहेलियों का स्मरण अवश्य होता है।

अमीर खुसरो की गद्य-रचना का स्वरूप इस प्रकार है। अखबार साहित्य प्रकार का परिचय इस रचना द्वारा होता है। इस रचना को इतिहास का अधिष्ठान प्राप्त हुआ है और फिर भी लेखक की प्रतिभा का विकास भी दिखाई देता है। साहित्य तथा इतिहास का संगम इस अखबार में हुआ है। व्यक्ति-वर्णन, स्थल-वर्णन तथा घटना-वर्णन इस अखबार की वर्णन-शैली के तीन प्रमुख घटक हैं। घटना वर्णनों में अतिशयोक्ति के कारण अद्भुत रम्यता भी हो गई है जो प्राठकों की जिज्ञासा बढ़ाने में अत्यंत समर्थ है। निवेदन की गतिमानता के कारण लेखक की शैली अत्यंत प्रवाही बन गई है। एक प्रसंग पढ़ने के पश्चात् दूसरा प्रसंग पढ़ने की उत्सुकता पाठक के मन में निर्माण होती है। इतिहासकालीन वातावरण का पुनर्निर्माण करने में भी लेखक सिद्धहस्त है। साथ ही साथ अपनी वाणी की काव्य-मयता के कारण उसकी गद्य शैली और भी निखर उठी है। पहेलियों के कर्ता का रचनाकौशल्य भी इस गद्य-शैली का एक लक्षणीय पहलू बन चुका है। अमीर खुसरो केवल रूखे 'अखबार-नवीस' (इतिहास-लेखक या वार्ता-लेखक) नहीं हैं बल्कि उनकी प्रतिभा ने इतिहास को भी साहित्य की श्रेष्ठता प्रदान की है।

(नोट- इस लेख में खजाइनुल फुतुह के जिन अंशों को उद्धृत किया गया है, वे अलीगढ़ विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग द्वारा प्रकाशित खिलजी कालीन भारत ' नामक ग्रंथ से लिए गए हैं। इस ग्रंथ में खुसरो के मूल ग्रंथ तथा उसके अँग्रेजी अनुवादों की सहायता से डॉ. सैय्यद अतहर अब्बास रिजवी ने हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किया है। अलीगढ़ विश्वविद्यालय तथा अनुवादक डॉ. रिजवी का ऋण-निर्देश करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।— लेखक)

• • •

अमीर खुसरो का राजधर्म-वर्णन

—डॉ. राजनारायण राय



महान् कला साधक अमीर खुसरो को जिन काव्यकृतियों ने अक्षय यश और महाकवि का उच्चासन दिया है उनमें 'नुह सिपहर' प्रथमोल्लेख्य है। उनकी पाँच मस्तिष्कियों में यह रचना चौथी है, किंतु, फन्नी खुसूसियात के लिहाज से सर्वोत्कृष्ट। जिन दिनों कृतिकार को कुत्बुद्दीन मुबारक शाह से सम्मान प्राप्त हो रहा था; 'नुह सिपहर' का सृजन हुआ। इसका प्रेरक तत्त्व बादशाह का आदेश है। यही कारण है कि यह ग्रंथ अपने सम्मानक सुलतान के नाम सादर मन्त्सूब है।

'नुह सिपहर' का अर्थ है नौ आकाश। इसमें कुल नौ अध्याय हैं। प्रथम दो अध्याय महत्वपूर्ण हैं ऐतिहासिक सामग्री की दृष्टि से। कुत्बुद्दीन शाह का राजसिंहासनारोहण, देवगिरि विजय, खुसरो

का आरंगल आक्रमण, लुद्दर महादेव की पराजय, धर्मार्थ मस्जिद निर्माण आदि का पूरे विस्तार के साथ निरूपण हुआ है। वैसे समूची रचना खुसरो के इतिहासकार के समर्थ व्यक्तित्व को व्यंजित करती है, पर प्रथम दो अध्याय विशेष रूप से। 'तीसरा सिपहर' देखकर आश्चर्य होता है क्योंकि आक्रमक विदेशी राजशक्ति का समर्थक एवं गौरव गायक होकर भी खुसरो ने पूरी ईमानदारी, तन्मयता तथा लगन से अपनी मातृभूमि-ब्रुतपरस्त काफिरों के देश भारत की प्रशंसा की है। तत्कालीन फारसी साहित्य में हिंदुस्तान के प्रति ऐसी निष्ठा, इतना उत्कृष्ट प्रेम, निर्मल हृदयोदगार अन्यत्र नहीं मिलता। सचमुच, यह अंश उनके लिए चक्षुउन्मीलक है जो अपनी संकीर्ण और पूर्वाग्रहदृष्टि दृष्टि के कारण भारत की पवित्र मिट्टी, जलवायु का आजीवन सेवन करके भी वफादारी का परिचय नहीं देते।

चौथे अध्याय में राजधर्म निरूपण है। उस काल में जब कि सुलतान की इच्छा-अनिच्छा ही सब कुछ होती थी और उनके इशारे पर हजारों के भेजे निकाले जा सकते थे, शाही कर्तव्य की ओर इंगित करना मौत को बुलावा देना था, खुसरो ने ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय पर कलम उठाकर उल्लेख्य कार्य किया है।

हमारे देश में राजशास्त्र सर्वथा अचूता या नितांत उपेक्षित नहीं रहा है। महाभारत के प्रमाण के अनुसार जिन आचार्यों ने राजधर्म पर चितन, मनन किया उनमें अग्रगण्य हैं—आचार्य प्रवर वृहस्पति, विशालाक्ष, शुक्र, सहस्राक्ष, महेन्द्र, प्राचेतस मनु, भरद्वाज आदि। महाभारत, मनुस्मृति, अर्थशास्त्र, अग्निपुराण आदि ग्रंथों में राजा के कर्तव्याकर्तव्य के प्रश्न को उठाकर पूर्ववर्ती सिद्धात के आलोक में ही सुलझाने का सफल प्रयत्न हुआ। हर्षवर्धन के काल तक तो खूब लिखा गया; तदुपरांत इसकी धारा मंद पड़ गई। किंतु इसे जीवित रखने का प्रयत्न कुछ निवंधकारों ने अवश्य किया। अमीर खुसरो ने भी इस दिशा में अत्यंत छोटा कदम उठाया था जिसका अध्ययन आगे किया जाता है।

'नुह सिपहर' के चौथे सिपहर में बादशाह तथा उसके अधीनस्थ मलिकों, अमीरों, खानों एवं पदाधिकारियों के कर्तव्य का वर्णन है। इसमें खुसरो एक सच्चे सलाहकार, एक उपदेशक नीतिज्ञ के रूप में आते हैं। जहाँदारी के संबंध में अमीर खुसरो ने बताया है कि बादशाह को किसी कार्य का निर्णय करने के पूर्व अपने अनुभवी हितैषियों और बुद्धिमानों से समुचित सलाह-मशविरा कर लेनी चाहिए। यहाँ यह सहज ही अनुमेय है कि कवि खुसरो ने अपनी आँखों अत्यंत

निकट से उन बादशाहों को देखा था जिन्हें दूसरे का परामर्श गवारा न था और जिनकी चपल, चंचल वृद्धि के प्रमाद से जान-माल की दर्दनाक हानियाँ होती थीं। सुचितन के अभाव में उठाए गए कदम कितने विधवंसक और प्रलयकारी होते हैं, यह कवि से छिपा न था। इसलिए बादशाहों को वृद्धिमानों से सलाह लेने की राय दी है। जिस तरह विशाल अट्टालिका एक दीप से प्रकाणित नहीं ही सकती, उसी तरह जहान का कार्य एक व्यक्ति द्वारा सम्भव नहीं। कवि का कहना है कि जब अफलातून जैसा महान् मलाह लेने में संकोच नहीं करता था तो इन बादशाहों को निश्चय ही परामर्श लेना चाहिए। तत्कालीन इतिहासकार जियाउद्दीन बरनी ने भी स्पष्टतया कहा है कि 'वड़े-वड़े कार्यों की सफलता अच्छी राय पर निर्भर है... मनमानी करने से राज्य में विघ्न पड़ जाता है।'

दूसरी बात युद्ध-संबंधी है। बादशाहत निर्भर करती है फौजी ताकत पर। इसलिए अमीर खुसरो का कहना है कि बादशाह को वह कार्य न करन चाहिए जिसे सेना न कर सकती हो। रणक्षेत्र में जाने के पूर्व खूब सोच-समझकर निर्णय लेना चाहिए। यदि वह मैंदाने-जंग में पहुँचता है तो उसे केवल युद्ध पर ही जोर देना चाहिए क्योंकि उस परिस्थिति में सफलता उसी से प्राप्त होती है। वहाँ युद्ध के सिवा और कुछ नहीं है। अमीर खुसरो के अनुसार, संसार के इकलीम पर विजय, अधिकार और शासन करने का हक बादशाह को छोड़कर अन्य किसी को नहीं है। जहाँदारी की आवश्यक शर्तों में से एक यह भी है कि हर काम को मौके पर करना करवाना चाहिए। उचित अवसर की पहचान बादशाह को अवश्यमेव होनी चाहिए।

तीसरी बात है दूरदर्जिता, वृद्धिमत्ता और सावधानी की। अमीर खुसरो ने मूर्ख, अदूरदर्शी, अयोग्य और विलासी सुलतानों की दुर्गति और असफलता देखी थी; सम्भवतः इसलिए 'तुगलकनामा' में असावधानी के कारणों एवं उससे उत्पन्न होनेवाले कुपरिणामों और हानियों का विवरण दिया है। कवि के अनुसार, चार वजहों से असावधानी पैदा होती है—वे हैं—मदिरा, प्रेम, यौवनावस्था और राजसिंहामन। जो बादशाह इन दस्तुओं का शिकार होता है, जिसकी आँखें इनकी रंगीनी में चौंधिया जाती हैं, वह गफलत में पड़ जाता है और अपने साथ प्रजा को भी ले-डूवता है। जहाँदारी की सफलता नीति कुशल, न्यायोप पादक, देशकालज्ञ, ज्ञानवृद्ध राजभृत्यों पर निर्भर है। ऐसे व्यक्तियों का चयन करते समय बादशाह को अपनी विलक्षण दृष्टि का परिचय देना चाहिए। किंतु इनमें से

अपने हितैषियों और विश्वासपात्रों को ढूँढ़ निकालने की अतिरिक्त सामर्थ्य भी होनी चाहिए। अपने शत्रु और मित्र की पहचान बादशाह के लिए अत्यंत आवश्यक है। अमीर खुसरो का यह स्पष्ट कथन है कि यदि सुलतान अपने अनुरक्त विश्वासी अनुचरों की हानि पहुँचाता है तो उसका पतन अवश्यम्भावी है। ऐसे प्रमाद से बचना सुलतान का कर्तव्य है। 'नुह सिपहर' में यह भी संकेतित है कि बादशाह को अपने राज्य तथा पड़ोसी राज्यों में घटित घटनाओं एवं गतिविधियों की ओर बेखबर नहीं रहना चाहिए।

चौथी बात है प्रजा रक्षा की। अमीर खुसरो ने एक ईमानदार मार्गदर्शक और निर्भीक राजधर्म उपदेष्टा की भाँति बादशाह का कर्तव्य जनहित या प्रजाकल्याण बतलाया है। 'तुगलक नामा' और 'नुह सिपहर' दोनों ग्रंथों से यह बात परिपूर्ण होती है। खुसरो का आदेश है, उसका (बादशाह का) कर्तव्य केवल अपनी रक्षा अथवा अपना ही कल्याण नहीं, वह समस्त प्रजा का उत्तरदायी है। 'नुह सिहपर' में भी यही इशारा है: 'बादशाहों को केवल प्रजा की रक्षा में सम्मान प्राप्त हो सकता है। बादशाह को अपनी प्रजा के विषय में समय-समय जानकारी प्राप्त करते रहना चाहिए।' इस तरह, खुसरी ने जड़मति, धर्मधि एवं कर्तव्य-विमुख सुलतानों को यह कर्तव्यबोध दिया है कि बादशाहत और कुछ नहीं, केवल प्रजारंजन है; उसे स्वरक्षा या आत्मकल्याण मानना अपने पद की अवमानना है। इस संदर्भ में महाभारत की यहूँ उक्ति स्मरणीय है:-

एष एव परो धर्मो यद् राजा रक्षति प्रजाः ।

शतानां हि यथा धर्मो रक्षणं परभा दया ॥

महाभारत : शांति पर्व : अध्याय ७१ : इतोऽसं. २६

सुलतान की कर्तव्यसूची में दान का विशेष रूप से उल्लेख है जो विपत्तिग्रस्त, पीड़ित जूनता की जीवनरक्षा के लिए नितांत आवश्यक है। अतः दान करना और अपनी प्रजा का आर्थिक, सामाजिक दशा में अवगत रहना राजधर्म है जिसकी अवहेलना से राज्य में अशांति और उपद्रव पैदा होते हैं। खुसरो ने यहाँ जिस बात पर जोर दिया है उसकी परिपूर्णि पूर्ववर्ती राजशास्त्र-विषयक ग्रंथों से हो जाती है। भीष्म ने आदर्श राजा को जिन छतीस गुणों से भंडित बताया है उनमें दानशील होना भी है— दाता नायन वर्षी स्यात् । (महाभारत : शांति पर्व : अध्याय इनोक संख्या ४)

अंतिम बात है न्याय-संबंधी। अमीर खुसरो न्याय मार्ग के कंटकों से खूब परिचित थे। उन्होंने यह अनुभव किया था कि न्याय-प्राप्ति के मार्ग में अमीरहाजिब बार्वक, मुशरिफ आदि बाधा सावित होते हैं और दीवाने कजा और दीवाने मजासिम के पदाधिकारी मनमानी कर न्याय का गला धोंटते हैं। तत्परिणामस्वरूप

‘नुह सिपहर’ में न्यायप्रिय खुसरो ने बादशाह को न्याय पर बल देने के लिए कहा है। लेखक के अनुसार, ‘न्याय के अतिरिक्त किसी और विषय पर ध्यान न देना चाहिए, ... यदि कोई बादशाह से न्याय चाहता हो तो हाजिब उसे रोकने न पाएँ।’ इस संदर्भ में खुसरो ने न्याय के लिए न्यायकर्ता पदाधिकारियों को यथावसर बादशाह का परामर्श लेने का संदेश दिया है। इसका संबंध क्यामत से जोड़कर ग्रंथकार ने धार्मिक आवरण दिया है और रिश्वतखोर हुक्कामों को उनके कर्तव्य का सम्यक् बोध कराया है।

जनहित करना भी खुसरो का बादशाह के लिए एक उपदेश है: ‘बादशाह को प्रत्येक स्थान पर ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि धनी तथा निर्धन लोगों को सुख-शांति प्राप्त होती रहे।’

जो कवि निर्भीक भाव से सर्व समर्थ सुलतान और बादशाह को सत्परामर्श देना अपना कर्तव्य मानता है वह पदाधिकारियों, सभारत्नों और सैनिकों को हिदायत और सलाह देने में पीछे कैसे रहता? चौथे सिपहर का अंतिम अंश इस दृष्टि से उल्लेख्य है। खुसरो के समकालीन वजीर, सचिव, नायब, मालिक, अमीर आदि प्रायः मौके की ताक में रहते और धोखा, विश्वासघात एवं छल से अपना उल्लू सीधा करते। विश्वसनीय अमात्म, दंडाधिकारी, अर्जेममालिक, अमीर दाद, सरजानदार आदि का नितांत अभाव था। एहसान फरामोशी में राजभूत्यों की आपस में होड़ थी। ऐसे सेवकों को अमीर खुसरो का यह हिदायतनामा है कि मालिक तथा सरदार! बादशाह ने तुझे यह पद प्रदान विया है। तुझे बादशाह की हृदय से सेवा करनी चाहिए। तुझे किसी प्रकार का अभिमान न करना चाहिए। अमीरों और वजीरों की फर्ज सूची में एक यह भी है कि उन्हें अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के मनोभावों, गतिविधियों एवं स्थितियों से भलीभाँति परिचित रहना चाहिए। राजकर्मचारियों के लिए अल्लाहूताला और बादशाह बराबर नहीं हैं; इसलिए डरना चाहिए तो प्रथम से, द्वितीय से कभी नहीं। निःस्वार्थ सेवा करना ही उनका सर्वोत्कृष्ट धर्म है।

अंत में दीवाने अर्ज के पदाधिकारियों के लिए नसीहत है। सरदारों, सिपहसालारों तथा सैनिकों का धर्म, खुसरो के मतानुसार शौर्यपूर्ण वीरता का प्रदर्शन है। लूटमारं करना सर्वथा अनुचित है। कमज़ोर, गरीब एवं दीन-दुखिया को किसी प्रकार की तकलीफ पहुँचाना उनका फर्ज नहीं। सैनिकों को खेतों की लहलहाती फसलों और खलिहान में एकत्र अन्न-देर को बर्बाद देखने तथा अन्नदाता किंतु निरीह भीले-भाले कृषकों को उत्पीड़ित करने में बेहद मजा आता था।

खुसरो ने उनको खबरदार करते हुए कहा है, 'यदि तू किसी के खलिहान का नाश कर देगा तो खलिहान भी शत्रु बन जाएगा। जिस बाली को हिंदू ने अपने हृदय से सींचकर तैयार किया है उसे तेरे घोड़े के पेट में न पहुँच जाना चाहिए।' इस तरह अत्यंत संक्षेप में खुसरो ने पूरी निर्भीकता से राजधर्म का निरूपण किया है। 'तारीखे फीरोजशाही' के आलोक में खुसरो प्रतिपादित विचारों का अध्ययन यह स्पष्ट कर देता है कि तृती-ए-हिंद की दृष्टि जितनी निर्मल, स्पष्ट और लोकोपकारी थी उतनी ही जियाउद्दीन बरनी की दूषित, संकीर्ण और कुरानोन्मुख ।^१

निष्कर्ष यह कि दसवीं से चौदहवीं शताब्दी तक गोपाल, लक्ष्मीधर, देवणभट्ट आदि जिन लेखकों ने अपने-अपने निबंध से राजशास्त्र-संबंधी लेखन को सबल एवं गतिशील बनाया है उनमें खुसरो का भी नाम परिगम्य होना चाहिए।

• • •

१. इस अध्ययन का आधार ग्रंथ सव्यद अतहर अब्बास रिजवी द्वारा अनु-दित खिलजी कालीन भारत है।

तूती-ए हिंद : साहित्यालोचकों की दृष्टि में

♦ कुछ सज्जन अमीर खुसरो को उर्दू का प्रथम कवि मानते हैं। यह मानना केवल उर्दू साहित्य को लगभग तीन शताब्दी और पीछे ले जाने का व्यर्थ प्रयास है। अमीर खुसरो का उल्लेख, प्रतिष्ठापूर्ण उल्लेख हिंदी ही के साहित्य के इतिहास में होना चाहिए, उर्दू के नहीं।

—श्रीजरत्नदास :

उर्दू साहित्य का इतिहास

♦ इसमें कोई संदेह नहीं कि इस भाषा का सबसे पहला कवि जो इस युग में स्पष्ट रूप से हमारे सामने आता है वह दिल्ली का अमीर खुसरो है। उन्होंने सबसे पहले उर्दू शब्दों का साहित्य में प्रयोग किया और सबसे पहले उर्दू में

कविता की... अमीर खुसरो की प्रसिद्धि उर्दू भाषा के कवि और साहित्यिक के रूप में नहीं है वरन् एक प्रकार से स्त्रष्टा हैं और इसलिए उनका महत्त्व ऐतिहासिक हैं।

—डॉ. बाबूराम सक्सेना :
उर्दू साहित्य का इतिहास

♦ हमें खड़ी बोली का सबसे पहला कवि अमीर खुसरो मिलता है जिसका जन्म सं. १३१२ में और मृत्यु संवत् १३२१ में हुई थी। अमीर खुसरो ने मस्नवी खिज़ा-नाम में, जिसमें मुख्यतः सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के पुत्र खिज़ खाँ और देवल देवी के प्रेम का वर्णन है, हिंदी भाषा के विषय में जो कुछ लिखा है इस अवसर पर वह उल्लेख के योग्य है। वे लिखते हैं—

“ मैं भूल में था पर अच्छी तरह सोचने पर हिंदी भाषा फारसी से कम नहीं ज्ञात हुई। अरबी के सिवा, जो प्रत्येक भाषा को मीर और सबों में मुख्य है, रई (अरब का एक नगर) और रूम की प्रचलित भाषाएँ समझने पर हिंदी से कम मालूम हुई। अरबी अपनी बोनी में दूसरी भाषा को नहीं मिलने देती, पर फारसी में यह कभी है कि बिना मेल के वह काम में आने योग्य नहीं होतीं। इस कारण कि वह शुद्ध है और यह मिली हुई है, उसे प्राण और इसे शरीर कह सकते हैं। शरीर में सभी वस्तुओं का मेल हो सकता है। पर प्राण से किसी का नहीं हो सकता। यमन के मूँगे से दरी के मोती की उपमा देना शोभा नहीं देता। सबसे अच्छा धन वह है जो अपने कोष में बिना मिलावट के हो, और न रहने पर माँगकर पूँजी बनाना भी अच्छा है। हिंदी भाषा भी अरबी के समान है क्योंकि उसमें भी मिलावट का स्थान नहीं है।”.....

अतएव अमीर खुसरो खड़ी बोली के आदि कवि ही नहीं हैं वरन् उन्होंने हिंदी तथा फारसी-अरबी में परस्पर आदान-प्रदान में भी अपने भरसक सहायता पहुँचाई है।

—राय बहादुर श्याम सुंदरदास :
हिंदी भाषा

♦ खुसरो अपने समकालीन हिंदू-मुस्लिम संस्कृति का एक महान् प्रतिनिधि था। मध्यकालीन इतिहास में उनका पूर्ण व्यक्तित्व समकालीन लोगों के मध्य अतुलनीय एवं अद्वितीय रूप में विशिष्ट प्रकार का दृष्टिगोचर होता है। वे उस युग के प्रतिनिधि हैं जो अपने सांस्कृतिक वैभव के लिए अत्यंत उज्ज्वल एवं प्रकाशमान हैं। साथ ही उनकी काव्य कल्पना सामाजिक स्थिति के लिए प्रेरक

थी क्योंकि उन्होंने युग के सांस्कृतिक जीवन को नए पथ की ओर अग्रसर किया था।”

—डॉ. यूसुफ हुसेन :
मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति एक झलक

♦ ... यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि जन जीवन में प्रचलित लोक-साहित्य में स्थान दिलाने का प्रथम श्रेय हिंदवी कवि खुसरो को ही है।... इतना निश्चित है कि सामान्य जनसमुदाय में प्रचलित लोकसाहित्य की श्रीवृद्धि में खुसरो ने महत्वपूर्ण योग दिया। यही कारण है कि हिंदी साहित्य के इतिहास में अमीर खुसरो का नाम अमिट है।

—माताददल जायसवाल :
हिंदी साहित्य : द्वितीय खंड

♦ दरवारी होने के कारण इनकी कविता मुसलमानी आदर्शों के आश्रय में पोषित हुई। यही कारण है कि वह बड़ी रसीली और मनोरंजक है। फारसी के अप्रतिम विद्वान होते हुए भी उन्होंने हिंदी की उपेक्षा नहीं की जो दिल्ली के आसपास बोली जाती थी। अनायास ही उन्होंने खड़ी बोली हिंदी को प्रथम बार कविता में स्थान दिया। यही कारण है कि ये खड़ी बोली के कवि कहे जाते हैं। इस प्रकार ये युगप्रवर्तनकारी हुए।

—डॉ. रामकुमार वर्मा :
हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

♦ अमीर खुसरो तेरहवीं शताब्दी का सर्व प्रधान कवि है...उसकी हिंदी रचनाएँ बहुमूल्य हैं। वे इतना प्रांजल और सुंदर हैं कि उनको देखकर यह आश्चर्य होता है कि पहले पहल एक मुसलमान ने किसी प्रकार ऐसी परिष्कृत और सुंदर हिंदी भाषा लिखी। ...उन्होंने हिंदी भाषा संबंधी जैसी मर्मज्ञता, योग्यता और निपुणता दिखलाई वह उल्लेखनीय है। उनके पहले के कवियों की रचनाओं से उनकी रचनाओं में अधिकतर प्रांजलता है जो हिंदी के भाष्डार पर उनका प्रशंसनीय अधिकार प्रकट करती है। जिस सावधानी और सफाई के साथ उन भाषाओं के शब्दों का प्रयोग उन्होंने किया है वह अनुकरणीय है।...एक विशेषता इनमें यह भी देखी जाती है कि अरबी के बहों में उन्होंने हिंदी पद्यों की रचना सफलतापूर्वक की है। साथ ही फारसी के वाक्यों को अपने पद्य में इस उत्तमता से मिलाया है, जो मुश्व कर देता है।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय ‘हरिऔध’ :
हिंदी भाषा और साहित्य का विकास

क्या आपको मालूम है, और नहीं है, तो होना चाहिए, कि हिंदी का सबसे पहला शायर, जिसने हिन्दी का साहित्यिक बीज बोया (व्यावहारिक बीज सदियों पहले पड़ चुका था) वह अमीर खुसरो था? क्या आपको मालूम है, कम-से-कम पाँच सौ मुसलमान शायरों ने हिंदी को अपनी कविता से धनी बनाया है जिनमें कई तो चोटी के शायर हैं?

—प्रेमचंदः
कुछ विचार

दिल्ली में मुगल वंश के संस्थापक बाबर ने साहित्य, वास्तु, संगीत, वेशभूषा और आचार-व्यवहार के तत्कालीन हिन्दु-मुसलमान अन्तर्मिश्रण को 'हिन्दुस्तानी' प्रवृत्ति के साहित्य में अग्रदूत थे विख्यात कवि अमीर खुसरो जिन्हें अलाउद्दीन खिलजी ने 'भारत-शुक' कहकर सम्मानित किया था...उन्होंने प्रणयगाथाओं की रचना की। उनकी इस प्रकार की सर्वाधिक सफल कृति थी 'हश्त बिहश्त' अथवा 'आठ स्वर्ग'। उन्होंने भारतीय कथाओं का प्रयोग किया था, फारसी कथाओं का नहीं जैसा कि निजामी ने अत्यन्त कौशलपूर्वक किया था। कम से कम फारसी साहित्य के विचार से 'हश्त-बिहश्त' की योजना सर्वथा नवीन थी। उनकी हिन्दी कविता स्फुट गीतों दोहों, और गजलों (जिनमें एक पंचित फारसी की है तो दूसरी हिन्दी की) तक सीमित है और इनका प्रचार मौखिक रूप से हुआ। अपनी गजलों के बल पर खुसरो अमर है और यह सर्वथा न्यायसंगत है। सादी और हाफिज जैसे फारसी के शायरों ने खुसरो की गजलों की प्रशंसा की तथा सम्पूर्ण एशिया में खुलकर उनकी नकल की जाने लगी।

—राधाकमल मुखर्जीः
भारत की संस्कृति और कला

खुसरो का जो रूप हिंदी में खुला, वह रहस्यवादी नहीं, सामान्य जन जीवन के सरस कवि का रूप है और वह कवि मनुष्य को परलोक का संकेत नहीं देकर यहीं के प्रेम, मस्ती और चुलबुलेपन का आनंद देता है। खुसरो चाहे पारंगत सूफी और संत रहे हों किंतु हम तो उन्हें जिस रूप में जानते हैं, वह श्रृंगार के मस्त आनंदी कवि का रूप है।

हमें मानना पड़ता है कि इस भाषा (खड़ी बोली) का प्राचीनतम लिखित साहित्य खुसरो का है। इसलिए खुसरो खड़ी बोलीवाली हिंदी और उर्दू दोनों के जनक माने जाते हैं।

भारत के सांस्कृतिक इतिहास में खुसरो ने बहुत बड़ी क्रांति की और सत्य ही वे हिंदी और उर्दू के प्रवर्तक कहलाने योग्य हैं।

—श्री दिनकर :
संस्कृति के चार अध्याय

संधिकाल की संध्या में अमीर खुसरो ने साहित्य को विविध रंगों से रंजित किया जब कि लौकिक साहित्य के आदर्श निश्चित नहीं थे और रचनाएँ धर्म या राजनीति के संकेतों पर नाचती थीं। उस समय विनोद और मनोरंजन की प्रवृत्तियों को जन्म देना साधारण काम नहीं था। यह अमीर खुसरो की विशेषता थी। साहित्य की तत्कालीन परिस्थिति अपभ्रंश मिथित काव्य की रचनाओं तक ही सीमित थी। पूर्व में उसने भी गम्भीर धर्म की भावना गोरखनाथ के शिष्यों द्वारा प्रचारित हो रही थी, उस समय अमीर खुमरो ने साहित्य के लिए एक नवीन मार्ग का अन्वेषण किया और वह था जीवन को संग्राम और आत्म-शासन की सुदृढ़ और कठोर श्रृंखला से मुक्त कर आनन्द और विनोद के स्वच्छन्द वायु-मंडल में विहार करने की स्वतंत्रता देना। यही अमीर खुमरो की मौलिनता थी। अमीर खुसरो जन साधारण की भाषा खड़ी बोली को नाहित्य रूप देने में सबसे पहले सफल हुए उन्होंने साहित्यिक की तत्कालीन अव्यवस्थित परिस्थितियों में फारसी के समान सिहासन पर हिंदी को आसीन किया। 'खालिक'-वारी कोश लिखकर उन्होंने अरबी, फारसी और हिंदी की त्रिवेणी को जन्म दिया। इन तीनों के पर्यायों से उन्होंने मुसलमानों और हिंदुओं की भाषा और संस्कृति जोड़ने का प्रयत्न किया। यदि यथार्थ में पूछा जाए तो उर्दू का जन्म खुसरो की कविता में ही हुआ।

—डॉ. रामकुमार वर्मा :
हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

• • •